❋ श्रीः ❋

श्रीबालमुकुन्दग्रन्थमाला–८

श्रीभगवद्रामानुजमुनीन्द्र विरचित

ग द्य त्र य

[शरणागतिगद्य–श्रीरङ्गगद्य–श्रीवैकुण्ठगद्य]

हिन्दी अनुवाद तथा अनुशीलन समेत

अनुवादक—

रा घ वा चा र्य

वैकुण्ठवासी सेठ श्री मगनीराम जी बांगड की

पुण्य स्मृति में

प्रकाशित

१९६० } 卐 { सं० २०१७

श्रीभगवद्रामानुजमुनीन्द्र विरचित

ग द्य त्र य

[शरणागतिगद्य-श्रीरङ्गगद्य-श्रीवैकुण्ठगद्य]

हिन्दी अनुवाद तथा अनुशीलन समेत

प्रथम संस्करण

संवत् २०१७ मार्गशीर्ष शुक्ल ११

सम्पादक, मुद्रक, प्रकाशक

राघवाचार्य

प्रकाशक मुद्रक

आचार्यपीठ आचार्यप्रेस

बरेली (उत्तरप्रदेश)

निवेदन

गद्यत्रय में स्तोत्रसाहित्य के ऐसे तीन रत्न हैं जिनसे शरणागति मार्ग के साधकों को प्रकाश मिलता रहा है। भगवान् रामानुजाचार्य की इस रसमयी एवं तत्त्वमयी वाणी की व्याख्या करने के लिये जिन जिन आचार्यों ने लेखनी उठाई उनमें श्रुतिप्रकाशिकाकार श्री सुदर्शन सूरि, श्री कृष्णपाद (पेरियवाच्चान् पिल्लै) तथा आचार्यसार्वभौम श्री वेदान्तदेशिक के नाम उल्लेखनीय हैं।

भारत की वर्तमान राष्ट्रभाषा हिन्दी के माध्यम से गद्यत्रय का स्वाध्याय किया जा सके इस उद्देश्य से हिन्दी अनुवाद के साथ गद्यत्रय प्रकाशित किया जा रहा है। आरम्भ में दिये गये अनुशीलन से गद्यत्रय के रहस्य को समझने में सुविधा होगी। अन्त में दी गई पाठभेदसूची एवं उद्धरणसूची से ज्ञान के संवर्धन में सहायता मिलेगी।

वैकुण्ठवासी सेठ श्री मगनीराम जी बाँगड की पुण्यस्मृति में उनके आचार्य अनन्त श्रीसमलंकृत जगद्गुरु रामानुजाचार्य उत्तराहोबिल झालरियामठाधीश्वर स्वामी श्री बालमुकुन्दाचार्य महाराज के नाम से अलंकृत **श्री बालमुकुन्दग्रन्थमाला** का आरम्भ किया गया है। इस ग्रन्थमाला के सात पुष्प प्रकाशित हो चुके हैं। आठवें पुष्प के रूप में यह ग्रन्थ उपस्थित है। शरणागतिमार्ग के अनुरागी इसे अपनाकर अनुगृहीत करेंगे, ऐसा विश्वास है।

—सम्पादक

विषय सूची

क्रमांक	विषय	पृष्ठ
१	गद्यत्रय अनुशीलन	क-भ
२	शरणागतिगद्य	१
३	श्रीरङ्गगद्य	१६
४	श्रीवैकुण्ठगद्य	२५
५	पाठभेद सूची	४१
६	उद्धरण सूची	४१
७	शुद्धि सूची	४२

गद्यत्रय :: अनुशीलन

गद्यत्रय

गद्यत्रय भगवान् रामानुजाचार्य की वाणी का अमर प्रसाद है। आचार्यसार्वभौम श्री वेदान्तदेशिक ने **'सारस्वतं शाश्वतम्'** कहकर इसे आचार्यश्री की सरस्वती का शाश्वत अमृत प्रवाह बताया है और **'प्राधान्येन प्रणीतम्'** कहकर इसकी प्रधानता का निर्देश किया है। आचार्य परमहंस थे, यह उनका 'हंसगीत' है। वे शरणागति विद्या के मन्त्रद्रष्टा थे, गद्यत्रय **शरणागति-उपनिषद्** है।

कहा जाता है कि फाल्गुन (मीन) मास के उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में होने वाले ब्रह्मोत्सव के अवसर पर श्रीरङ्गधाम में आचार्य श्रीरामानुजाचार्य ने इसकी रचना की। लक्ष्मी काव्य का श्लोक है——

ततः कदाचित् स हि रङ्गनायिका श्रीरङ्गनाथावपि फल्गुनोत्तरे।
मुदाभिषिक्तौ च तदा प्रपद्य तौ गद्यत्रयं चाप्यवदद् यतीश्वरः॥

आशय यह है कि उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में श्रीरङ्गनायिका समेत श्रीरङ्गनाथ भगवान् का सप्रेम अभिषेक होने के पश्चात् यतीश्वर श्रीरामानुजाचार्य ने उनकी शरण ग्रहण कर गद्यत्रय का गान किया।

अपनी तीर्थमूर्ति के रूप में भगवान् श्रीरङ्गनाथ अवभृथ स्नान के पश्चात् जब मन्दिर में वापिस पधारते हैं तो यजुर्वेद

के तैत्तिरीयोपनिषद् का पाठ किया जाता है। इस पाठ की समाप्ति तब होती है जब मन्दिर के महामण्डप में श्रीरङ्गनाथ भगवान् श्री रङ्गलक्ष्मी के साथ विराजमान होते हैं। तैत्तिरीयोपनिषद् का अन्तिम सूक्त न्यासविद्या (शरणागति) का निर्देश करता है। इसी निर्देश की पूर्ति में आचार्य श्री रामानुजाचार्य ने इस अवसर पर गद्यत्रय का गान किया।

उत्सव के इस अवसर पर आजकल जब प्रबन्धपाठी भगवान् के सामने गद्यत्रय का पाठ करते करते श्री वैकुण्ठगद्य के छठे वाक्य तक पहुँचते हैं तो भगवान् को नैवेद्य अर्पित किया जाता है। इस अर्पण का भाव है आत्महवि का समर्पण। इसके पश्चात् श्री वैकुण्ठगद्य के अन्तिम वाक्य को बोलकर उपसंहार किया जाता है।

गद्यत्रय की रूपरेखा

गद्यत्रय के अन्तर्गत तीन गद्य गिने जाते हैं—

(१) शरणागतिगद्य, (२) श्रीरङ्गगद्य और (३) श्रीवैकुण्ठगद्य। शरणागति गद्य को बृहद्गद्य (पृथु गद्य) श्रीरङ्गगद्य को लघुगद्य तथा श्री वैकुण्ठगद्य को मितगद्य भी कहते हैं। शरणागति गद्य में संवाद है, श्री रङ्गगद्य में प्रार्थना है और श्रीवैकुण्ठगद्य में उपदेश। तीनों गद्यों में मिलाकर ३९ वाक्य हैं जिनमें ३२ गद्य में हैं। गद्यवाक्यों की यह बत्तीस की संख्या बत्तीस ब्रह्मविद्याओं के शरणागति विद्या में पर्यवसान का संकेत करती है।

शरणागति गद्य में कुल पच्चीस वाक्य हैं। वाक्य संख्या ७, ८, ९, १० तथा २५ पद्य में हैं। ७ व ८ पाञ्चरात्र आगम के श्लोक हैं ९ व १० गीता के श्लोक हैं। अन्तिम पद्य मिलता तो सभी पुस्तकों में है किन्तु प्राचीन व्याख्याकारों की इस पर टीका नहीं मिलती। वाक्यसंख्या १४ तथा १५ में गीता के तीन तीन उद्धरण हैं तथा वाक्य संख्या २३ में श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण से ३ तथा गीता से एक उद्धरण है।

शरणागतिगद्य के पहिले चार वाक्यों में श्रीरामानुज-लक्ष्मी संवाद है। पहिला तथा दूसरा वाक्य आचार्य की वाणी में है। तीसरा तथा चौथा लक्ष्मी की ओर से हैं। इसके पश्चात् २४ वें वाक्य तक यतिपति-लक्ष्मीपति संवाद है। ५ वें से १७ वें वाक्य तक आचार्य की वाणी है। १८ वें से २४ वें तक के वाक्य भगवान् की ओर से हैं। अन्तिम वाक्य आचार्य की वाणी है।

श्रीरंगगद्य में श्री रङ्गनाथ भगवान् की शरणागति एवं प्रार्थना है। श्री रङ्गनाथ भगवान् अर्चावतार हैं और श्रीरंग-गद्य शरणागति का संक्षिप्त संस्करण है। इस गद्य में वाक्यों की संख्या कुल सात है जिनमें चौथा और पाँचवां दो वाक्य पद्य में हैं। ये प्राचीन श्लोक हैं।

श्री वैकुण्ठगद्य में वैकुण्ठधाम का वर्णन है। वाक्यों की संख्या सात है। पहिला वाक्य पद्य में है। शेष गद्य में हैं। चौथे वाक्य में भगवान् के रूप के वर्णन के प्रसंग में स्तोत्र-रत्न के कतिपय श्लोकांश दिये गये हैं।

गद्यत्रय की विषयसूची

गद्यत्रय के वाक्यों में विषय का क्रम इस प्रकार है—

शरणागतिगद्य

१. श्रीशब्दवाच्या लक्ष्मी की शरणागति
२. भगवच्छरणागति की प्राप्ति के लिये लक्ष्मी की प्रार्थना
३-४ लक्ष्मी का आशीर्वाद
५. भगवान् की शरणागति। (छत्तीस सम्बोधनों के द्वारा भगवान् के स्वरूप रूप, गुण वैभव आदि का वर्णन है)
६. द्वयमन्त्र का स्मरण
७. पाञ्चरात्र आगम के दो श्लोक। भगवच्छरणागति से भिन्न समस्त साधनों का त्याग
८. पाञ्चरात्र आगम का एक श्लोक। भगवान् का ही उपाय और उपेय के रूप में ग्रहण।
९. गीता का एक श्लोक। भगवान् का सर्वविध बन्धुत्व।
१०. गीता का एक श्लोक। भगवान् की प्रसन्नता के लिये शरणागति
११. पापों के लिये क्षमा-याचना
१२. काम्यकर्मों के लिये क्षमायाचना
१३. माया से उद्धार करने की प्रार्थना
१४. ज्ञानी भक्त का भाव प्रदान करने की प्रार्थना
१५. परभक्ति प्रदान करने की प्रार्थना
१६. परभक्ति परज्ञान और परमभक्ति की याचना
१७. निरन्तर अनुभूति से युक्त नित्य कैंकर्य की याचना

१८. भगवान् का अभीष्ट दान
१९. अभीष्टसिद्धि का आश्वासन
२०. उत्तरकृत्य का आदेश
२१. नित्य कैंकर्य का आश्वासन
२२. संशय का निवारण
२३. अपनी प्रतिज्ञाओं का समर्थन
२४. अपने आदेश का उपसंहार
२५. अन्तिम स्मृति के लिये प्रार्थना

श्रीरङ्गगद्य

१. नित्य कैंकर्य की प्रार्थना
२. शरणागति
३. नित्य कैंकर्य की प्रार्थना
४. दास्यभाव की याचना
५. अनन्य प्रीति की याचना
६. परमार्थानुभूति के लिये प्रार्थना
७. शरणागति की प्रार्थना

श्रीवैकुण्ठगद्य

१. भगवदनुभव की प्रतिज्ञा
२. भगवान् की शरणागति का उपदेश
३. भगवत्प्राप्ति का चिन्तन
४. भगवत्प्राप्ति की रूपरेखा—वैकुण्ठधाम का वर्णन
५. वैकुण्ठधाम में भगवान् की उपासना

६. वैकुण्ठधाम में भगवान् का साक्षात्कार
७. वैकुण्ठधाम में भगवान् क अनुभव

गद्यत्रय के सिद्धान्त

गद्यत्रय की विशेषता

गद्यत्रय शरणागति मार्ग का प्रमाण ग्रन्थ है। इसके द्वारा श्रीरामानुज सम्प्रदाय अपने साधन-पथ और उसके लिये दिये गये भगवान् के आश्वासन को प्रमाणित करता है। आचार्य श्री रामानुजाचार्य अवतार-पुरुष थे; नित्यविभूति के व्यक्ति थे। उन्होंने शरणागति गद्य के द्वारा केवल अपने लिये ही भगवच्छरणागर्ति का अनुष्ठान किया अथवा उनके अनुष्ठान से प्रसन्न होकर भगवान् ने केवल उनके लिये ही वरदान दिया ऐसा मानना शरणागतिशास्त्र को न जानना है। श्री वरवर मुनि ने यतिराज श्री रामानुजाचार्य की प्रार्थना करते हुए कहा है–

कालत्रयेऽपि करणत्रयनिर्मितानि पापक्रियस्य शरणं भगवत्क्षमैव।
सा च त्वयैव कमलारमणेऽर्थितत्वात् क्षेमम्स एवहि यतीन्द्र भवच्छ्रितानाम्॥

यतीन्द्र ! त्रिकाल में मनसा, वाचा, कर्मणा पाप में संलग्न चेतन के लिये भगवान् की दया का ही एकमात्र सहारा है। इसके लिये आपने ही लक्ष्मीपति से प्रार्थना करली। यह प्रार्थना आपके शिष्यजनों एवं उनकी परम्परा का कल्याण करने वाली है।

श्रीवेदान्तदेशिक ने भगवान् श्रीरंगनाथ की प्रार्थना की है—

उक्त्या धनञ्जयविभीषणलक्ष्यया ते प्रत्याय्य लक्ष्मणमुनेर्भवतावतीर्णम् ।
श्रुत्वा वरं तदनुबन्धमदावलिप्ते नित्यं प्रसीद भगवन् मयि रङ्गनाथ ॥

(न्यासतिलक २२)

रंगनाथ भगवन् ! अर्जुन और विभीषण के लिये कहे गये वचनों से विश्वास दिलाकर आपने श्री रामानुजाचार्य को जो वरदान दिया था उसका लाभ आचार्य की शिष्यपरम्परा तक पहुँचता है यह मेरे गर्व की बात है। शिष्यपरम्परा के द्वारा मेरा आचार्य से सम्बन्ध है अतः आप मुझ पर प्रसन्न हों।

उपर्युक्त उद्धरणों के अनुसार भगवान् रामानुजाचार्य की परम्परा उनके अनुष्ठान में अपने साधन का अनुभव करती है तथा भगवान् के द्वारा दिये गये वरदान को अपने लिये भी मानती है।

सिद्धान्तचर्चा की पद्धति

सिद्धान्तचर्चा के अनेकों प्रकार हैं प्राचीन व्याख्याकारों ने शरणागति मन्त्र के विशेषार्थों की दृष्टि से गद्यत्रय पर विचार किया है। शरणागति मन्त्र ने जिस शरणागति का विधान किया है उसकी त्रिपुटी में शरण्य, शरणागत और शरणागति का ग्रहण होता है। इसी क्रम से यहाँ विचार करेंगे।

शरण्य

नारायण नाम—गद्यत्रय में जिस शरणागति मन्त्र की व्याख्या है उसके अनुसार शरण्य का नाम नारायण है। तीनों गद्यों में 'नारायण' नाम मिलता है। शरणागति गद्य के ५ वें वाक्य में दो बार 'नारायण' नाम आया है।

अन्य नाम—'नारायण' नाम के अतिरिक्त शरणागति गद्य में परब्रह्मभूत, पुरुषोत्तम, श्रीमान्, श्रीवैकुण्ठनाथ और भगवान् नाम मिलते हैं। श्रीरंगगद्य में परब्रह्मभूत, पुरुषोत्तम, श्रीरंगशायी भगवान् को काकुत्स्थ, श्रीमन्, पुरुषोत्तम एवं श्रीरंगनाथ के नाम से सम्बोधित किया गया है। वैकुण्ठगद्य में परम पुरुष और भगवान् के नाम से उनका उल्लेख मिलता है।

नामों का अर्थ—इन नामों का साधारण अर्थ इस प्रकार है—

१. **नारायण**—वह सम्पूर्ण जगत् में हैं और सारा जगत् उनमें है।
२. **परब्रह्मभूत**—वह महान् हैं।
३. **पुरुषोत्तम**—वह समस्त पुरुषों से (चेतनों) से उत्तम हैं।
४. **श्रीमान्**—वह लक्ष्मीपति हैं।
५. **वैकुण्ठनाथ**—वह वैकुण्ठधाम के स्वामी हैं।
६. **भगवान्**—वह समस्त कल्याणगुणों के आकर हैं।
७. **काकुत्स्थ**—ककुत्स्थ वंश में उन्होंने श्रीराम के रूप में अवतार ग्रहण किया है।
८. **श्रीरङ्गनाथ**—वह श्रीरंगधाम के स्वामी हैं।
९. **परमपुरुष**—वह समस्त पुरुषों से बढ़कर हैं।

स्वरूप—शरणागति गद्य के ५ वें वाक्य का पहिला सम्बोधन शरण्य के स्वरूप को इस प्रकार प्रकट करता है—

(१) वह समस्त हेयगुणों से रहित हैं। अचेतन पदार्थों में होने वाले विकार तथा चेतनों को होने वाले दुःख, अज्ञान आदि उनमें नहीं होते।

(२) वह समस्त कल्याणों के आधार हैं।

(३) वह अपने से भिन्न समस्त चेतन एवं अचेतन पदार्थों से विलक्षण हैं।

(४) वह अनन्त हैं अर्थात् देश, काल और वस्तु की सीमा से वह सीमित नहीं है।

(५) वह ज्ञानानन्द के एक स्वरूप हैं।

(क) ज्ञान के कारण वह स्वयं प्रकाश और आनन्द के कारण प्रिय हैं।

(ख) आनन्द भी एक विशेष प्रकार का ज्ञान ही तो है। ऐसा आनन्द उनका स्वरूप है।

(ग) उनका स्वरूप चिन्मय आनन्द है, जड़ आनन्द नहीं। आनन्द के पहिले ज्ञान शब्द इस तथ्य को प्रकट करता है।

रूप—पाञ्चरात्र आगम ने भगवत्तत्त्व के पांच प्रकार बताये हैं। ये हैं—पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी और अर्चा। शरणागतिगद्य और वैकुण्ठगद्य में पर रूप का स्पष्ट वर्णन है। श्रीरङ्गगद्य में 'काकुत्स्थ' विभव का और 'श्रीरङ्गनाथ' अर्चा

का निर्देश करता है। व्यूह का संकेत शरणागतिगद्य के जगदुदयविभवलयलील' में तथा 'नारायण' में मिलता है। भगवान् के इन सभी रूपों की विशेषतायें शरणागति गद्य के ५ वें वाक्य के दूसरे सम्बोधन के अनुसार इस प्रकार हैं—

१. **स्वाभिमत**––जो भगवान् को सदा अभिमत है अर्थात् कभी अप्रिय नहीं होता।
२. **अनुरूप**––जो कभी अपने स्वरूप का बाधक नहीं होता।
३. **एकरूप**––जो सदा एक रूप रहता है। कभी विकारयुक्त नहीं होता।
४. **अचिन्त्य**––उस जैसा कोई दूसरा रूप नहीं होता। जो तर्क से परे है।
५. **दिव्य**––जो पाञ्चभौतिक नहीं है।
६. **अद्भुत**––जो आश्चर्यमय है। सदा नवीन लगता है।
७. **नित्य**––जो नित्य है।
८. **निरवद्य**––जो शरीरगत दोषों से रहित है।
९. **औज्ज्वल्य**––जो प्रकाशमान है।
१०. **सौन्दर्य**––जिसका एक एक अंग सुन्दर है।
११. **सौगन्ध्य**––जो सुगन्ध से युक्त है।
१२. **सौकुमार्य**––जो सुकुमार है।
१३. **लावण्य**––जो पूर्ण रूप से सुन्दर है।
१४. **यौवन**––जो यौवन से सम्पन्न है।

इन विशेषताओं में से अचिन्त्य, दिव्य, अद्भुत, नित्य, यौवन, लावण्य, सौकुमार्य आदि का उल्लेख वैकुण्ठगद्य में भी

है। ध्यान रहे कि इसी प्रकार की अन्य विशेषतायें भी भगवान् के रूप में सदा रहती हैं।

भगवान् के रूप में, उसके वर्ण, आभा आदि के अतिरिक्त एक एक अंग की शोभा अवर्णनीय होती है। वैकुण्ठगद्य के चतुर्थ वाक्य में अलकावली, ललाट, नेत्र, भ्रूलता, नासिका, कपोल, अधर, ग्रीवा, (गरदन), स्कन्ध (कन्धे), करतल (हथेली), अंगुलियाँ, नखावली एवं चरणों का निर्देश किया गया है।

भूषण—रूप के प्रसङ्ग में वस्त्र भूषण भी उल्लेखनीय हैं। पीताम्बर भगवान् का विशेष वस्त्र है। भूषणों में शरणागतिगद्य के ५ वें वाक्य के चौथे सम्बोधन में किरीट, मुकुट, चूडामणि, कुण्डल, कण्ठहार, भुजबन्ध, कंगन, श्रीवत्सचिन्ह, कौस्तुभमणि, मुक्ताहार, उदरबन्धन, कर्धनी, नूपुर, इन भूषणों को गिनाया गया है वैकुण्ठगद्य के चौथे वाक्य में इन भूषणों के अतिरिक्त अंगूठियों एवं वैजयन्ती, वनमाला का भी उल्लेख है। भूषणों की संख्या इतनी ही नहीं है। ये नाम तो केवल विशेष भूषणों का संकेत करते हैं। ये सारे भूषण दिव्य हैं। भगवान् की अनुरूपता, विचित्रता, आश्चर्यमयता, नित्यता निर्मलता, सुगन्ध, सुखस्पर्शता एवं उज्ज्वलता इनकी विशेषतायें हैं।

आयुध—भगवान् के आयुध भी असंख्य हैं। ये सारे आयुध भगवान् के अनुरूप, अचिन्त्य, शक्तिसम्पन्न एवं दिव्य हैं। इन आयुधों में सुदर्शनचक्र पाञ्चजन्य शंख, कौमोदकी गदा, नन्दक खड्ग एवं शाङ्र्ग धनुष उल्लेखनीय हैं।

शरणागतिगद्य और वैकुण्ठगद्य में इनका नाम निर्देश है। शंख, चक्र, एवं गदा के साथ भगवान् के एक कर में कमल का भी उल्लेख मिलता है। परमसंहिता के अनुसार भगवान् के कमल में सृष्टि का, चक्र में स्थिति का, गदा में संहार का, शंख में मुक्ति का बीज है। भगवान् के पाँच आयुध आकाश वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी के शक्ति केन्द्र भी माने जाते हैं।

भूषणों और आयुधों का रहस्य—भगवान् के रूप, भूषणों एवं आयुधों का रहस्य यह है कि जगत के समस्त चेतनाचेतन तत्त्वों का केन्द्र इनमें विद्यमान है। कौस्तुभमणि चेतन जीवात्मा का प्रतीक है। श्रीवत्स चिन्ह प्रकृति का केन्द्र है। गदा में महत्तत्व, शंख में सात्विक अहंकार, शार्ङ्ग धनुष में तामस अहंकार, खड्ग में ज्ञान, चक्र में मन, बाणों में ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ, वनमाला में पञ्चमहाभूतों का अनुभव किया जाता है।

गुण—भगवान् असंख्य कल्याण-गुणों के आकर हैं। तीनों ही गद्यों में इनका उल्लेख मिलता है। ये सारे गुण स्वाभाविक हैं तथा सीमारहित हैं। ज्ञान, बल,ऐश्वर्य, वीर्य, शक्ति और तेज ये छः प्रधान गुण हैं। इनका विस्तार अन्य गुणों में मिलता है। इन अन्य गुणों में सौशील्य वात्सल्य आदि गुण ऐसे हैं जिनका उपयोग आश्रित जनों के संग्रह एवं संरक्षण में होता है। प्रमुख गुणों की तालिका एवं उनकी व्याख्या इस प्रकार है—

१. **ज्ञान**—भगवान् सर्वज्ञ हैं। वे स्वतः सर्वदा पूर्ण रूप से समस्त पदार्थों का साक्षात्कार करते हैं।

२. **बल**—भगवान् समस्त पदार्थों को धारण करते हैं। ऐसा करने से उनको कोई श्रम नहीं होता।

३. **ऐश्वर्य**—भगवान् समस्त पदार्थों का नियमन करते हैं। वह सर्वनियन्ता हैं।

४. **वीर्य**--धारण और नियमन करने में वे कभी शिथिल नहीं होते। सब का उपादान होने पर भी उनमें कभी कोई विकार नहीं होता।

५. **शक्ति**--अघटित को घटित करने की सामर्थ्य उनमें है।

६. **तेज**—उनको किसी सहकारी की अपेक्षा नहीं होती। वे कभी किसी से पराभूत नहीं होते।

७. **सौशील्य**--भगवान् की सुशीलता यह है कि वे महान् से महान् होते हुए छोटे से छोटे से मिलते हैं।

८. **वात्सल्य**—गोमाता का अपने बछड़े के प्रति, माता का अपनी सन्तान के प्रति जो प्रेम देखा जाता है उसे वात्सल्य कहते है। भगवान् प्रेमपूर्वक अपने अभिमतजनों के दोषों को क्षमा के द्वारा नष्ट कर देते हैं। यह भगवान् का वात्सल्य है।

९. **मार्दव**--भगवान् के स्वभाव में मृदुता है जिसके कारण वे अपने अभिमत जनों के विरह को सहन नहीं कर पाते और सरलता से उनको प्राप्त हो जाते हैं।

१०. **आर्जव**—ऋजुता भगवान् का गुण है। उनके मन वाणी और क्रिया में एकरूपता रहती है।

११. **सौहार्द**—भगवान् समस्त प्राणियों के सुहृद हैं। सब का हित चाहना उनका स्वभाव है।

१२. **साम्य**—जाति, गुण, अवस्था, वृत्ति आदि के तारतम्य की चिन्ता न कर भगवान् समस्त प्राणियों को समान रूप से आश्रय प्रदान करते हैं।

१३. **कारुण्य**—भगवान् दया के समुद्र हैं। विना किसी प्रयोजन के वे दूसरों के दु:खों को दूर करने की इच्छा रखते हैं।

१४. **माधुर्य**—मधुरता भगवान् में सदा रहती है। वे सदा रसरूप हैं।

१५. **गाम्भीर्य**—भगवान् स्वभाव से गम्भीर हैं।

१६. **औदार्य**—प्रत्युपकार की कोई इच्छा न रखकर भगवान् देते हैं। अधिक से अधिक देकर भी कभी तृप्त नहीं होते।

१७. **चातुर्य**—आश्रितजनों की शंकाओं तथा दोषों के दूर करने में भगवान् चतुर हैं।

१८. **स्थैर्य**—अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करने में वे कभी विचलित नहीं होते। स्थिरता उनमें सदा रहती है।

१९. **धैर्य**—कठिन से कठिन परिस्थिति में भी वे अपनी प्रतिज्ञा से विचलित नहीं होते।

२०. **शौर्य**—विरोधियों में भी निर्भयता से प्रवेश करने में भगवान् समर्थ हैं।

२१. **पराक्रम**—अपनी सामर्थ्य से विरोधियों को छिन्न-भिन्न करने में वे सदा समर्थ हैं।

२२. **सत्यकाम**—सत्यकामत्व भगवान् का एक गुण है। इसके कारण उनके तथा उनके भक्तजनों के भोग्य पदार्थ सदा उपस्थित रहते हैं।

२३. **सत्यसंकल्प**—सत्यसंकल्पत्व भी भगवान् का एक गुण है। इसके कारण भगवान् अपूर्व भोग्य पदार्थों की सृष्टि तत्काल करते हैं। इस जगत से लेकर वैकुण्ठधाम पर्यन्त सर्वत्र भगवान् का यह संकल्प अमोघ रहता है।

२४. **कृतित्व**—उपकार करना भगवान् का स्वभाव है।

२५. **कृतज्ञता**—दूसरों के द्वारा किये गये थोड़े उपकार को भी सदा स्मरण रखते हैं।

२६. **श्रियःपतित्व**—भगवान् श्रियः पति अर्थात् श्रीशब्दवाच्या लक्ष्मी के पति हैं। लक्ष्मी के स्वरूप, रूप, गुण, वैभव एवं ऐश्वर्य शील आदि असंख्य कल्याण गुण भगवान् के अभिमत एवं अनुरूप हैं। लक्ष्मी और नारायण दिव्य-दम्पती हैं। दोनों ही उपाय एवं प्राप्य हैं। शरणागति में लक्ष्मी का पुरुषकार भी है। इस प्रकार पुरुषकार, उपाय और

प्राप्य ये तीनों रूप लक्ष्मी के हैं। शरणागतिगद्य में सर्वप्रथम उनकी ही शरणागति की गई है। शरणागति गद्य के ५ वें वाक्य में छटा सम्बोधन लक्ष्मी से ही सम्बद्ध है। इस सम्बोधन में भगवान् को श्रीवल्लभ कहने के पश्चात् अगले सम्बोधन में उनको भूमि नीला नायक कहा गया है। वैकुण्ठगद्य के चौथे वाक्य में बताया गया है कि लक्ष्मी वैकुण्ठधाम को अपनी दृष्टि से आप्लावित करती हैं तथा समस्त परिजनों को सेवा की आज्ञा प्रदान करती हैं।

ध्यान रहे कि श्रीदेवी, भूदेवी और नीलादेवी ये तीन रूप क्रमशः भगवान् की दया, क्षमा और उदारता को विशेषतया प्रकट करते हैं।

लीलाविभूति—यह सम्पूर्ण जगत भगवान् की लीलाविभूति है। शरणागतिगद्य के ५ वें वाक्य के १० वें सम्बोधन से इसकी ये विशेषतायें प्रकट होती हैं—

१. इस जगत का स्वरूप, स्थिति और प्रवृत्ति भगवान् के संकल्प के अधीन है।
२. यह जगत् भगवान् का शेषभूत है।
३. इस जगत् में तीन धारायें हैं—जड़प्रकृति, काल और चेतन जीवात्मा।

४. इस जगत् में चार विभाग मिलते हैं—भोग्य, भोक्ता, भोगोपकरण और भोगस्थान। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध भोग्य हैं। चेतन जीवात्मा भोक्ता हैं। इन्द्रियाँ भोगोपकरण हैं और शरीर से लेकर ब्रह्माण्ड तक सारे भोगस्थान हैं।

नित्यविभूति—लीलाविभूति से परे भगवान् की नित्यविभूति है शरणागति गद्य के ५ वें वाक्य के ९ वें सम्बोधन में संक्षिप्त रूप से तथा वैकुण्ठगद्य में विस्तृत रूप से इसका वर्णन किया गया है। तात्पर्य इस प्रकार है—

१. नित्यविभूति नित्य, दिव्य एवं अनन्त है।

२. वैकुण्ठधाम, परम व्योम आदि इसके नाम है।

३. यह दिव्यधाम वाणी एवं मन के लिये अगोचर है।

४. इसका स्वरूप, स्वभाव, परिमाण, ऐश्वर्य आदि का पूरा ज्ञान इस जगत् में अशक्य है। ऋषियों एवं देवताओं के लिये यह दिव्यधाम अचिन्त्य है।

५. इस दिव्यधाम में भगवान् के अभिमत अनन्त भोग्य, भोगोपकरण एवं भोगस्थान हैं। दिव्यधाम के चारों ओर दिव्य आवरण हैं, मध्य में दिव्य उद्यान हैं जिनके केन्द्र में दिव्य आयतन है। यह दिव्य आयतन उन दिव्य उपवनों से सुशोभित है जिनमें दिव्य लीलामण्डप क्रीडामण्डप एवं बावलियाँ हैं। दिव्य शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध का अनुभव होता है।

६. दिव्यधाम का केन्द्र है दिव्य आयतन और दिव्य आयतन का केन्द्र है दिव्य आस्थान मण्डप। इस मण्डप के मध्य में दिव्ययोग पर्यङ्क है जहाँ अनन्त शेष पर शेषी भगवान् के पररूप का साक्षात्कार होता है।

७. इस दिव्यधाम में अनन्त परिजन एवं परिचारिकायें हैं जिनमें शेष, विष्वक्सेन एवं गरुड प्रधान हैं। परिजनों में उल्लेखनीय हैं पार्षद, गणनायक और द्वारपाल तथा परिचारिकाओं में चामरहस्ता देवियाँ।

तात्त्विकदृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होता है कि अनन्त शेष सिंहासन, शय्या, आसन, पादुका, वस्त्र, तकिया आदि रूपों में अपने शेषभाव को प्रकट करते हैं। शेष ज्ञान और बल के प्रतीक हैं। गरुड़ वाहन, ध्वज, वितान एवं व्यजन के रूप में अपने दास्यभाव को प्रकट करते हैं। वह वेदमय हैं। विष्वक्सेन दण्डधर और सेनापति हैं। परिजनों में जो नौ चामरहस्ता देवियाँ, आठ द्वारपाल और आठ गणनायक हैं वे भगवान् के विभिन्न गुणों को अभिव्यक्त करते हैं।

शरणागत

चेतनाचेतन—श्रीरङ्गगद्य के पहिले तथा श्रीवैकुण्ठ गद्य के दूसरे वाक्य के प्रथम पद में बताया गया है कि त्रिविध चेतन और अचेतन का स्वरूप, स्थिति और प्रवृत्ति भगवान् के अधीन है। तीन प्रकार के चेतन हैं—(१) नित्य, (२) मुक्त और (३) बद्ध। नित्य वे हैं जो भगवान् की नित्यविभूति में सदा से परिजन भाव में उपस्थित हैं। मुक्त वे हैं जो कर्मबन्धन एवं

प्रकृति सम्बन्ध से मुक्त होकर इस भाव को प्राप्त होते हैं। ये नित्य और मुक्त सदा भगवान् का अनुभव और कैंकर्य करते रहते हैं। बद्ध वे हैं जो अभी तक संसार से मुक्त नहीं हो सके हैं।

बद्ध चेतन—चेतन को बन्धन की यह अवस्था कहाँ से और कैसे प्राप्त हुई? इस प्रश्न का उत्तर शरणागति गद्य के ११, १२, १३, १८ तथा २१ संख्या के वाक्यों में है। इन वाक्यों से प्रकट होता है कि अनादि कर्मप्रवाह के कारण चेतन की प्रवृत्ति प्रकृति की ओर है और वह संसार के बन्धन में है। पाप (विपरीत कर्म), अहंकार (विपरीत ज्ञान) और वासना के अन्योन्याश्रित सम्बन्ध ने इस कर्म के प्रवाह को बनाये रक्खा है। फलस्वरूप चेतन का अपना स्वरूप जागृत नहीं हो पाता। वह विपरीत ज्ञान और विपरीत कर्म के परिणामों को त्रिविध तापों के रूप में भोगता रहता है।

कर्म, पाप, अहंकार, वासना और त्रिविध तापों की व्याख्या इस प्रकार की जाती है—

कर्म—कर्मके तीन भेद हैं—प्रारब्ध, सञ्चित और क्रियमाण।

१. प्रारब्ध—जिनका भोग आरम्भ हो गया है।

२. संचित—जिनका भोग अभी आरम्भ नहीं हुआ है।

३. क्रियमाण—जो किये जारहे हैं। कालभेद से इसके तीन प्रकार हैं—भूत, वर्तमान और भविष्य। भूत—जो किये जा चुके हैं, वर्तमान—जो किये जा रहे हैं और भविष्य—जो किये जाने वाले हैं।

पाप—पाप के पाँच रूप हैं–अकृत्यकरण, कृत्याकरण, भगवदपचार, भागवतापचार और असह्यापचार।

१. अकृत्यकरण—निषिद्ध आचरण जैसे हिंसा, असत्य, चोरी, व्यभिचार आदि।

२. कृत्याकरण—शास्त्रविहित सन्ध्यावन्दन, तर्पण आदि कर्मों को न करना।

३. भगवदपचार—भगवान् के अपराध जैसे भगवान् की सत्ता पर अविश्वास, अवतारों में प्राकृतिक बुद्धि, भगवान् की आज्ञाओं का उल्लंघन आदि।

४. भागवतापचार—भागवतों का अपराध जैसे, भागवतों का अपमान, उनकी उत्कृष्टता को सहन न करना आदि।

५. असह्यापचार—असहनीय अपराध जैसे, भगवान् और भागवतों से अकारण द्वेष, उनकी निन्दा करना आदि।

अहंकार—देहात्म भ्रम, यह विपरीत ज्ञान का एक प्रकार है। जगत के विषय में भ्रम, यह विपरीत ज्ञान का दूसरा प्रकार है।

वासना—पाप करने के लिये प्रेरित करने वाली रुचि।

त्रिविध ताप—आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक। आध्यात्मिक ताप दो प्रकार के होते हैं–

मानसिक जैसे काम, क्रोध, लोभ, भय आदि; शारीरिक-रोग।

आधिदैविक–अग्नि, वायु बिजली आदि से प्राप्त होने वाले सुख-दुःख।

आधिभौतिक–पशु, पक्षी, मनुष्य आदि से प्राप्त होने वाले सुख-दुःख।

लक्ष्य—बद्ध अवस्था चेतन की स्वाभाविक अवस्था नहीं है। इस अवस्था में उसका अपना स्वरूप तिरोहित (छिपा) रहता है। तत्त्वतः चेतन भगवान् का शेषभूत है, भगवान् उसके शेषी हैं। इस स्वरूप की पूर्ण अनुभूति उसे प्रकृति के बन्धन से मुक्त होने पर होती है। इस अनुभूति का पर्यवसान भगवदनुभूति में होता है और भगवदनुभूति की पूर्ति भगवान् के नित्य कैंकर्य में होती है जो चेतन को नित्य विभूति में प्राप्त होता है। यही चेतन का परम लक्ष्य है। शरणागतिगद्य के २, १७, १८ व २१ श्रीरंग गद्य के १, २ व ३ और वैकुण्ठगद्य के ४, ५, ६ व ७ वाक्यों में इसका वर्णन है। इसका सार यह है—

१. मुक्त होने पर चेतन को भगवान् का जो अनुभव प्राप्त होता है उसकी विशेषतायें ये हैं—

क. परिपूर्ण—यह अनुभव परिपूर्ण होता है।

ख. अनवरत—इसका क्रम बीच में नहीं टूटता।

ग. नित्य—इसका अन्त नहीं होता।

घ. विशदतम—अनुभव का इससे अधिक विस्तार नहीं होता।

ङ. अनन्य प्रयोजन—इस अनुभव का अन्य कोई प्रयोजन भी नहीं होता।

च. अनवधिकातिशय—यह पूर्ण प्रीतिरूप होता है।

२. मुक्त पुरुष का यह अनुभव प्रीति, प्रीति से रति और रति से कैंकर्य की दशा को प्राप्त होता है। अनुभव का तात्पर्य है शेषत्वज्ञान, प्रीति है तदनुकूल बुद्धि, रति है तदनुकूल इच्छा और कैंकर्य है तदनुकूल ध्यवहार।

३. भगवदनुभव के फलस्वरूप होनेवाली प्रीति परिपूर्ण होती है और प्रीति जब रति का भाव ग्रहण करती है तो उसमें समस्त अवस्थाओं के अनुरूप शेषभाव रहता है। यही कैंकर्य का प्रधान स्वरूप है।

४. उपर्युक्त भगवदनुभव की स्थिति के पहिले की तीन अवस्थायें परभक्ति, परज्ञान और परम भक्ति हैं जिनको क्रमशः प्राप्त कर लेने के पश्चात् भगवदनुभव होता है। इन तीन अवस्थाओं से अभिप्राय यह हैं—

क. परभक्ति—साक्षात्कार करने की इच्छा।

ख. परज्ञान—उत्तरोत्तर साक्षात्कार।

ग. परमभक्ति—निरन्तर अनुभव की आकांक्षा।

५. मुक्त अवस्था में जो भगवदनुभव होता है उसमें निरन्तर संयोग की अवस्था रहती है। इस दृष्टि से परभक्ति का अर्थ होता है दर्शन की कामना, परज्ञान का संयोग और परमभक्ति का वियोग को सहन न करने की स्थिति।

शरणागति

साधन—परमपुरुषार्थभूत मोक्ष अर्थात् नित्यविभूति में भगवदनुभव तथा भगवान् का नित्य कैंकर्य प्राप्त करने के दो साधन हैं–(१) भक्ति और (२) शरणागति। श्रीरंगगद्य के द्वितीय वाक्य से प्रकट होता है कि सात्त्विकता, आस्तिकता आदि गुणों के कारण साधक कर्मयोग में प्रवृत्त होता है। कर्मयोग की समुचित क्रिया के द्वारा ज्ञानयोग का द्वार खुलता है। ज्ञानयोग के सम्यक् ज्ञान से भक्तियोग में प्रवृत्ति होती है। जो कर्मयोग, कर्मयोग से ज्ञानयोग और ज्ञानयोग से भक्तियोग की साधना में समर्थ नहीं है उनके लिये शरणागति का साधन है।

शरणागति का आदेश—भगवान् श्री राम ने रामायण में तथा भगवान् श्री कृष्ण ने गीता में जिन शब्दों के द्वारा शरणागति का आदेश दिया है वे शब्द शरणागतिगद्य के २३ वें वाक्य में भगवान् के श्रीमुख से पुनः प्रकट हुए हैं– शपथ के साथ।

शरणागति की साधना—शरणागति मार्ग में पहिले लक्ष्मी की शरणागति, तत्पश्चात् नारायण की शरणागति की जाती है। शरणागतिगद्य में यही क्रम है। पुरुषकार लक्ष्मी का

और इसके पश्चात् उपाय और उपेय के रूप में लक्ष्मी समेत नारायण, यह व्यवस्था है। गद्यत्रय में 'श्रीमन्' इस व्यवस्था का द्योतक है। उपाय और उपेय दोनों का वर्णन गद्यत्रय में है। शरणागति के अंगों का संकेत भी इसमें मिलता है। (१) आनुकूल्यसंकल्प, (२) प्रातिकूल्यवर्जन, (३) कार्पण्य (४) महाविश्वास, (५) गोप्तृत्ववरण और (६) आत्मनिवेदन गद्यत्रय से गतार्थ हैं। स्वनिष्ठा के साथ साथ उक्तिनिष्ठा की भी चर्चा इसमें है। इन्हीं कारणों से शरणागति की साधना में शरणागति गद्य का उपयोग किया जाता है। और शरणागति के पश्चात् शरणागति मार्ग के साधक के लिये ये तीनों गद्य नित्य स्मरणीय हैं।

॥ श्रीः ॥

॥ श्रीमते रामानुजाय नमः ॥

श्रीभगवद्रामानुज-विरचित-गद्यत्रये, प्रथमं

॥ शरणागतिगद्यम् ॥

यो नित्यमच्युतपदाम्बुजयुग्मरुक्म-
व्यामोहतस्तदितराणि तृणाय मेने ।
अस्मद्गुरोर्भगवतोऽस्य दयैकसिन्धो
रामानुजस्य चरणौ शरणं प्रपद्ये ॥

वन्दे वेदान्तकर्पूरचामीकरकरण्डकम् ।
रामानुजार्यमार्याणां चूडामणिमहर्निशम् ॥

जो नित्य भगवान् के युगल चरणारविन्दरूपी सुवर्ण के मोह के कारण उनसे भिन्न समस्त पदार्थों को तिनके के समान समझते थे उन एकमात्र दया के सागर अपने गुरुदेव भगवान् श्री रामानुजाचार्य के चरणों की शरण ग्रहण करता हूँ ॥१॥

जो वेदान्तरूपी कर्पूर की रक्षा के लिये सुवर्ण की पेटी के समान हैं, उन आचार्यचूडामणि श्री रामानुजाचार्य को मैं अहर्निश प्रणाम करता हूँ ॥२॥

भगवन्नारायणाभिमतानुरूपस्वरूपरूपगुणविभवैश्वर्यशीलाद्यनवधिकातिशयासङ्ख्येयकल्याणगुणगणां, पद्मवनालयां, भगवतीं, श्रियं, देवीं, नित्यानपायिनीं, निरवद्यां देवदेवदिव्यमहिषीम्, अखिलजगन्मातरम्, अस्मन्मातरम् अशरण्यशरण्याम् अनन्यशरणः शरणमहं प्रपद्ये । (१)

पारमार्थिकभगवच्चरणारविन्दयुगलैकान्तिकात्यन्तिकपरभक्तिपरज्ञानपरमभक्तिकृत-परिपूर्णानवरतनित्यविशदतमानन्यप्रयोजनानवधिकातिशयप्रियभगवदनुभवजनितानवधिकातिशय-

---

जो भगवान् नारायण के अभिमत और अनुरूप स्वरूप, रूप, गुण, वैभव, ऐश्वर्य एवं शील आदि असीम, अतिशय एवं असंख्य कल्याणगुणों के समुदाय से युक्त हैं, जिनका कमलवन में निवास है, जो निरन्तर भगवान् के साथ रहती हैं, जो समस्त दोषों से रहित हैं, जो देवदेव नारायण की दिव्य महिषी हैं, जो सम्पूर्ण जगत की माता हैं, हमारी माता हैं, सर्वलोकशरण्य भगवान् जिनके शरण्य नहीं हो सके ऐसे अशरण को शरण देने वाली उन भगवती श्री देवी की मैं अनन्यशरण शरण ग्रहण करता हूँ ।।१।।

भगवान् के युगल चरणारविन्द परमार्थ हैं, उनकी ऐकान्तिक एवं आत्यन्तिक अर्थात् नित्ययुक्त, पर भक्ति, परज्ञान एवं परमभक्ति के द्वारा परिपूर्ण, अनवरत (अविच्छिन्न) नित्य, विशदतम, अन्य प्रयोजन से रहित, असीम अतिशय प्रीतिरूपी भगवदनुभव होता है । इस अनुभव के फलस्वरूप असीम

प्रीतिकारिताशेषावस्थोचिताशेषशेषतैकरतिरूप - नित्यकैङ्कर्य-प्राप्त्यपेक्षया पारमार्थिकी भगवच्चरणारविन्दशरणागतिर्यथा-वस्थिता अविरताऽस्तु मे । (२)

अस्तु ते । (३)

तयैव सर्वं सम्पत्स्यते । (४)

अखिलहेयप्रत्यनीक कल्याणैकतान स्वेतरसमस्तवस्तु-विलक्षण अनन्तज्ञानानन्दैकस्वरूप ! १

स्वाभिमतानुरूपैकरूपाचिन्त्य - दिव्याद्भुत - नित्यनिरवद्य-

एवं अतिशय प्रीति के द्वारा समस्त अवस्थाओं के अनुरूप परिपूर्ण शेषभावापन्न प्रीतिरूप नित्यकैंकर्य की प्राप्ति होती है । यह नित्यकैंकर्य मुझे अपेक्षित है इसलिये भगवान् के चरणारविन्द की शरणागति, जो पारमार्थिक है निरन्तर यथार्थ रूप में मुझे प्राप्त हो ।।२।।

तथास्तु । भगवान् की शरणागति तुम्हें प्राप्त हो ।।३।। उस शरणागति से ही सब कुछ प्राप्त हो जावेगा ।।४।।

आप समस्त हेय गुणों से रहित हैं । आप समस्त कल्याण गुणों के आकर हैं । अपने से भिन्न समस्त पदार्थों से आप विलक्षण हैं, अनन्त ज्ञान एवं आनन्द के एक स्वरूप हैं । १

आपका दिव्यरूप आपके अभिमत एवं अनुरूप है, एक रूप, अचिन्त्य, दिव्य, अद्भुत, नित्य, दोषरहित, निरतिशय,

निरतिशयौज्ज्वल्यसौन्दर्यसौगन्ध्यसौकुमार्यलावण्ययौवनाद्यनन्त-गुणनिधिदिव्यरूप ! २

स्वाभाविकानवधिकातिशय - ज्ञान - बलैश्वर्यवीर्यशक्तितेज-स्सौशील्यवात्सल्य-मार्दवार्जवसौहार्द-साम्यकारुण्यमाधुर्यगाम्भीर्यौदार्यचातुर्य-स्थैर्यधैर्यशौर्यपराक्रमसत्यकामसत्यसङ्कल्पकृतित्व-कृतज्ञताद्यसङ्ख्येयकल्याणगुणगणौघमहार्णव ! ३

स्वोचितविविधविचित्रानन्ताश्चर्य-नित्यनिरवद्यनिरतिशय-सुगन्धनिरतिशयसुखस्पर्शनिरतिशयौज्ज्वल्यकिरीटमकुटचूडाव-तंसमकरकुण्डलग्रैवेयकहारकेयूरकटकश्रीवत्सकौस्तुभमुक्तादामो-

---

औज्ज्वल्य, सौन्दर्य, सौगन्ध्य, सौकुमार्य, लावण्य, यौवन, आदि अनन्त गुणों से युक्त है। २

आप स्वाभाविक असीम अतिशय ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, शक्ति, तेज, सौशील्य, वात्सल्य, मार्दव, (मृदुता) आर्जव, (ऋजुता) सौहार्द, साम्य, कारुण्य, माधुर्य, गाम्भीर्य, औदार्य, चातुर्य, स्थैर्य, धैर्य, शौर्य पराक्रम, सत्यकाम, सत्यसंकल्प, कृतित्व (उपकारिता) कृतज्ञता आदि असंख्य कल्याण गुण-समूह के महासागर हैं। ३

आप अपने योग्य, विविध, विचित्र, अनन्त, आश्चर्यमय, नित्य, निर्मल, निरतिशय सुगंध, निरतिशय सुखस्पर्श, निरतिशय औज्ज्वल्य से युक्त किरीट, मुकुट, चूड़ामणि, मकराकृत कुण्डल, कण्ठहार, केयूर (भुजबन्ध) कटक (कंगन) श्रीवत्सचिन्ह,

दरबन्धनपीताम्बरकाञ्चीगुणनूपुराद्यपरिमितदिव्यभूषण ! ४

स्वानुरूपाचिन्त्यशक्ति – शङ्खचक्रगदासिशाङ्र्गाद्यसङ्ख्येय-नित्यनिरवद्यनिरतिशयकल्याणदिव्यायुध ! ५

स्वाभिमत - नित्यनिरवद्यानुरूप - स्वरूप-रूपगुणविभवैश्वर्य-शीलाद्यनवधिकातिशयासङ्ख्येयकल्याणगुणगणश्रीवल्लभ ! एवम्भूतभूमिनीलानायक ! ६-७

स्वच्छन्दानुवर्ति - स्वरूपस्थितिप्रवृत्तिभेदाशेषशेषतैकरति-रूपनित्यनिरवद्यनिरतिशयज्ञानक्रियैश्वर्याद्यनन्तगुणगणशेष-

---

कौस्तुभमणि, मुक्ताहार, उदरबन्धन, पीताम्बर, काञ्चीगुण (कर्धनी) नूपुर आदि अपरिमित दिव्य भूषणों से विभूषित हैं। ४

आप अपने अनुरूप, अचिन्त्य शक्तिसम्पन्न, शंख, चक्र, गदा, खड्ग, शार्ङ्ग धनुष आदि असंख्य, नित्य, निर्मल, निरतिशय कल्याणमय दिव्य आयुधों से सम्पन्न हैं। ५

आप अपने अभिमत नित्य निरवद्य अनुरूप स्वरूप, रूप, गुण, विभव, ऐश्वर्य, शील आदि असीम, अतिशय असंख्य कल्याण गुण गणों से अलंकृत श्री लक्ष्मी के प्रियतम हैं। ऐसे ही विशेषणों से विभूषित भूदेवी और नीला देवी के नायक हैं। ६-७

जो आपके संकल्प के अनुगामी हैं अनुरूप स्वरूप, स्थिति प्रवृत्ति के भेद से सम्पन्न हैं पूर्ण शेषता विषयक प्रीति से युक्त, तथा नित्य, निरवद्य, निरतिशय, ज्ञान, क्रिया, ऐश्वर्य आदि गुण-

शेषाशनगरुडप्रमुखनानाविधानन्तपरिजनपरिचारिकापरिचरित-चरणयुगल ! ८

परमयोगिवाङ्मनसापरिच्छेद्यस्वरूपस्वभावस्वाभिमतविविधविचित्रानन्तभोग्यभोगोपकरणभोगस्थानसमृद्धानन्ताश्चर्यानन्तमहाविभवानन्तपरिमाणनित्यनिरवद्यनिरतिशयवैकुण्ठनाथ ! ९

स्वसङ्कल्पानुविधायिस्वरूप-स्थितिप्रवृत्तिस्वशेषतैकस्वभाव-प्रकृति-पुरुषकालात्मकविविधविचित्रानन्तभोग्यभोक्तृवर्गभोगोपकरणभोगस्थानरूपनिखिलजगदुदयविभवलयलील ! १०

गणों से सम्पन्न हैं ऐसे शेष, विष्वक्सेन, गरुड आदि अनेक प्रकार के अनन्त परिजन एवं परिचारिकायें आपके चरण-कमलों की परिचर्या करती हैं। ८

जिसका स्वरूप एवं स्वभाव परमयोगियों के वाणी और मन से परे है, जो आपके अभिमत विविध विचित्र अनन्त भोग्य, भोगोपकरण एवं भोगस्थानों से सम्पन्न है, जो अनन्त आश्चर्यमय, अनन्त महा वैभव से सम्पन्न, अनन्त विस्तारयुक्त नित्य निरवद्य एवं निरतिशय है ऐसे वैकुण्ठ के आप स्वामी हैं। ९

जिसका स्वरूप, स्थिति एवं प्रवृत्ति आपके संकल्पानुसार है, आपकी शेषता जिसका स्वभाव है, ऐसे प्रकृति, पुरुष और काल रूप विविध विचित्र अनन्त भोग्य, भोक्तृवर्ग, भोगोपकरण, एवं भोगस्थानरूप सम्पूर्ण जगत की सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय आपकी लीला है। १०

सत्यकाम ! सत्यसङ्कल्प ! परब्रह्मभूत ! पुरुषोत्तम ! महाविभूते ! श्रीमन् ! नारायण ! श्रीवैकुण्ठनाथ ! ११-१८

अपारकारुण्य – सौशील्य – वात्सल्यौदार्यैश्वर्य – सौन्दर्य-महोदधे ! १९

अनालोचितविशेषाशेषलोकशरण्य ! प्रणतार्त्तिहर ! आश्रितवात्सल्यैकजलधे ! २०-२२

अनवरतविदितनिखिलभूतजातयाथात्म्य ! अशेषचराचर-भूत निखिलनियमननिरत ! अशेषचिदचिद्वस्तुशेषिभूत !

आप सत्यकाम, सत्यसंकल्प, परब्रह्मस्वरूप, पुरुषोत्तम महावैभवसम्पन्न श्रीमान्, नारायण और श्रीवैकुण्ठधाम के नाथ हैं। ११-१८

आप अपार करुणा, सुशीलता, वत्सलता, उदारता, ऐश्वर्य एवं सुन्दरता के महासमुद्र हैं। १९

गुणविशेष का विचार किये बिना आप सम्पूर्ण जगत को शरण देने के लिये प्रस्तुत हैं, शरणागत के समस्त दुःखों को दूर करने वाले हैं, शरणागतवत्सलता के एकमात्र समुद्र हैं। २०-२२

आपको सम्पूर्णभूतों के यथार्थ स्वरूप का निरन्तर ज्ञान रहता है। सम्पूर्ण चेतनाचेतन जगत की समस्त क्रियाओं के नियमन करने में आप संलग्न रहते हैं। आप समस्त चेतनाचेतन पदार्थों के शेषी हैं तथा सम्पूर्ण जगत के आधार हैं।

निखिलजगदाधार ! अखिलजगत्स्वामिन् ! अस्मत्स्वामिन् ! सत्यकाम ! सत्यसङ्कल्प ! सकलेतरविलक्षण ! अर्थिकल्पक ! आपत्सख ! श्रीमन् ! नारायण ! अशरण्यशरण्य ! २३-३६

अनन्यशरणः त्वत्पादारविन्दयुगलं शरणमहं प्रपद्ये ।(५)

अत्र द्वयम् । (६)

पितरं मातरं दारान् पुत्रान्बन्धून्सखीन्गुरुन् ।
रत्नानि धनधान्यानि क्षेत्राणि च गृहाणि च ।।
सर्वधर्मांश्च संत्यज्य सर्वकामांश्च साक्षरान् ।
लोकविक्रान्तचरणौ शरणं तेऽव्रजं विभो ।। (७)

आप सम्पूर्ण जगत के स्वामी हैं। आप मेरे स्वामी हैं। आप सत्यकाम और सत्य संकल्प हैं। अपने अतिरिक्त समस्त पदार्थों से आप विलक्षण हैं। आप याचकों के लिये कल्पवृक्ष हैं, आपत्ति में सहायक हैं। लक्ष्मी के स्वामी हैं, आप नारायण हैं। जिनके लिये कहीं भी शरण नहीं है उनको भी शरण देने वाले हैं। २३-३६

मैं अनन्य शरण आपके चरणकमलों की शरण ग्रहण करता हूँ। ।।५।।

यह द्वय मन्त्र की व्याख्या है ।।६।।

विभो ! पिता, माता, पत्नी, पुत्र, बन्धु, सखा, गुरु, रत्न, धन-धान्य, क्षेत्र, गृह, सारे धर्म अर्थात् समस्त साधन और साध्य, तथा आत्मानुभव पर्यन्त समस्त कामनाओं को त्याग

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च गुरुस्त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥ (८)

पिताऽसि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् ।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव ॥

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम् ।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥

कर मैं आपके चरणों की, जो समस्त लोकों के अधिष्ठाता हैं शरण लेता हूँ ॥७॥

देवदेव ! आप ही माता हैं, आप ही पिता हैं, आप ही बन्धु हैं, आप ही गुरु हैं, आप ही विद्या हैं, आप ही धन हैं, आप ही मेरे सर्वस्व हैं ॥८॥

अप्रतिम प्रभावशाली ! आप इस चराचर लोक के पिता हैं, परम पूजनीय गुरु हैं। त्रिलोकी में आप के समान कोई नहीं है; आप से बढ़कर तो कोई हो ही कैसे सकता है ॥९॥

इसलिये स्तुति करने के योग्य आप सर्वेश्वर को प्रणाम करके शरीर को चरणों में डालकर (सांग शरणागति द्वारा) मैं प्रसन्न करता हूँ। देव ! जिस प्रकार पिता पुत्र का और मित्र मित्र का अपराध सहन कर लेते हैं, उसी प्रकार मेरे प्रेम के विषय आप अपने प्रेम के विषयभूत मेरे अपराध क्षमा करें ॥१०॥

मनोवाक्कायैरनादिकाल-प्रवृत्तानन्ताकृत्यकरण-कृत्याकरण-भगवदपचार-भागवतापचारासह्यापचाररूप - नानाविधानन्तापचारान् आरब्धकार्यान् अनारब्धकार्यान् कृतान् क्रियमाणान् करिष्यमाणांश्च सर्वानशेषतः क्षमस्व । (११)

अनादिकालप्रवृत्तं विपरीतज्ञानम् आत्मविषयं कृत्स्नजगद्विषयं च विपरीतवृत्तं चाशेषविषयमद्यापि वर्तमानं वर्तिष्यमाणं च सर्वं क्षमस्व । (१२)

मदीयानादिकर्मप्रवाहप्रवृत्तां भगवत्स्वरूपतिरोधानकरीं

मन, वाणी और शरीर द्वारा अनादिकाल से मेरे किये हुये असंख्य न करने योग्य काम करने, करने योग्य काम न करने, भगवदपचार, भागवतापचार, असह्यापचार रूप अनेक प्रकार के अगणित अपचारों को जिन्होंने अपना फलभोग दान आरम्भ कर दिया है अथवा नहीं किया है, जो किये जाचुके हैं, किये जा रहे हैं अथवा किये जाने वाले हैं आप विशेष रूप से क्षमा करें ॥११॥

आत्मा तथा सम्पूर्ण जगत के विषय में जो विपरीत ज्ञान मुझमें अनादिकाल से चला आरहा है, स्वविषयक विपरीत वृत्त, परविषयक विपरीत वृत्त, जो आज भी वर्तमान है तथा आगे भी होने वाला है उस सब को आप क्षमा करें ॥१२॥

मेरे अनादि कर्मप्रवाह के कारण जिसकी प्रवृति हुई है, जो भगवान् के स्वरूप को छिपाने वाली है, विपरीत ज्ञान की

विपरीतज्ञानजननीं स्वविषयायाश्च भोग्यबुद्धेर्जननीं देहेन्द्रियत्वेन भोग्यत्वेन सूक्ष्मरूपेण चावस्थितां दैवीं गुणमयीं मायां, दासभूतम् 'शरणागतोऽस्मि, तवास्मि दासः' इति वक्तारं मां तारय। (१३)

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ॥
उदारास्सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ।

जननी है, अपने विषय में भोग्यबुद्धि उत्पन्न करने वाली है, देह, इन्द्रिय शब्द आदि गुण तथा सूक्ष्म इन चार रूपों में स्थित है ऐसी माया से मुझ दास का उद्धार करो; क्योंकि मैं आपके शरणागत हूँ और आपका दास हूँ इस प्रकार कह चुका हूँ ॥१३॥

आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी इन चार प्रकार के भक्तों में आत्मा को शेषभूत और भगवान् को ही परमप्राप्य मानने वाला ज्ञानी, जो नित्ययुक्त होता है और जिसकी भक्ति भगवत्प्राप्ति के लिये होती है श्रेष्ठ होता है।

ये चारों प्रकार के भक्त उदार हैं किन्तु ज्ञानी तो मेरा अन्तरात्मा ही है। वह मुझको ही परमप्राप्य मानकर सदा मुझ में ही स्थित रहता है।

बहुत से पुण्यमय जन्मों के पश्चात् ऐसा ज्ञानी भक्त मेरी शरण ग्रहण करता है। भगवान् वासुदेव ही मेरे प्राप्य, प्रापक

आस्थितस्स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् ॥
बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।
वासुदेवस्सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥
इति श्लोकत्रयोदितज्ञानिनं मां कुरुष्व । (१४)

पुरुषस्स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ।
भक्त्या त्वनन्यया शक्यः... ... ...
... ... मद्भक्तिं लभते पराम् ॥
इति स्थानत्रयोदितपरभक्तियुक्तं मां कुरुष्व । (१५)

परभक्तिपरज्ञानपरमभक्त्येकस्वभावं मां कुरुष्व । (१६)

आदि सब कुछ हैं ऐसा ज्ञानी महात्मा संसार में अत्यन्त दुर्लभ है ।

उपर्युक्त तीन श्लोकों में जैसे ज्ञानी भक्त का वर्णन किया गया है वैसा ही ज्ञानी भक्त मुझे बनाइये ॥१४॥

अर्जुन ! वह परम पुरुष अनन्य भक्ति से प्राप्त होता है ।

अनन्य भक्ति के द्वारा ही मैं तत्त्वतः जाना, देखा और प्रवेश किया जा सकता हूँ ।

मेरी परम भक्ति को प्राप्त करता है ।

उपर्युक्त तीनों स्थानों पर जिस परभक्ति का निर्देश किया गया है उससे मुझे सम्पन्न बनाइये ॥१५॥

परभक्ति, परज्ञान और परमभक्ति ही जिसका स्वभाव हो ऐसा मुझे बनाइये ॥१६॥

परभक्तिपरज्ञानपरमभक्तिकृतपरिपूर्णानवरत-नित्यविशद-तमानन्यप्रयोजनानवधिकातिशयप्रियभगवदनुभवोऽहं तथाविध-भगवदनुभवजनितानवधिकातिशयप्रीतिकारिताशेषावस्थोचिता-शेषशेषतैकरतिरूपनित्यकिङ्करो भवानि । (१७)

एवंभूतमत्कैङ्कर्य-प्राप्त्युपायतयाऽवक्लृप्तसमस्तवस्तुविहीनो-ऽपि, अनन्ततद्विरोधिपापाक्रान्तोऽपि, अनन्तमदपचारयुक्तोऽपि, अनन्तमदीयापचारयुक्तोऽपि, अनन्तासह्यापचारयुक्तोऽपि, १

एतत्कार्यकारणभूतानादिविपरीताहङ्कारविमूढात्मस्वभावो-ऽपि, एतदुभयकार्यकारणभूतानादिविपरीतवासनासंबद्धोऽपि,

---

मुझे परभक्ति, परज्ञान एवं परमभक्ति के द्वारा परिपूर्ण, अनवरत, नित्य विशदतम, अन्य प्रयोजन से रहित, असीम अतिशय प्रीति रूपी भगवदनुभव हो। ऐसे भगवदनुभव के फलस्वरूप असीम एवं अतिशय प्रीति के द्वारा समस्त अवस्थाओं के अनुरूप परिपूर्ण शेषभावापन्न प्रीतियुक्त नित्य किंकर होऊँ ॥१७॥

यद्यपि इस प्रकार मेरे कैंकर्य की प्राप्ति के लिये जो उपाय बताये गये हैं उन समस्त साधनों से तुम रहित हो, उनके विरोधी अनन्त पापों से आक्रान्त भी हो, असंख्य मेरे अपचारों से युक्त हो, असंख्य भागवतापचारों से सम्पन्न हो, असंख्य असह्य अपचारों से युक्त हो। १

इन अपचारों का कारण है अनादि विपरीत अहंकार जिसने तुम्हारे स्वभाव को भी मूढ बना दिया। इन अपचारों

एतदनुगुण - प्रकृतिविशेषसंबद्धोऽपि, एतन्मूलाध्यात्मिकाधिभौतिकाधिदैविकसुखदुःख - तद्धेतुतदितरोपेक्षणीयविषयानुभवज्ञानसङ्कोचरूपमच्चरणारविन्द-युगलैकान्तिकात्यन्तिकपरभक्तिपरज्ञानपरमभक्तिविघ्नप्रतिहतोऽपि, येन केनापि प्रकारेण द्वयवक्ता त्वं, २

केवलं मदीययैव दयया निःशेषविनष्टसहेतुकमच्चरणारविन्दयुगलैकान्तिकात्यन्तिकपरभक्तिपरज्ञानपरमभक्तिविघ्नः, ३

एवं अहंकार का कारण है अनादि विपरीत वासना जिससे भी तुम सम्बद्ध हो। इन पाप, अहंकार और वासना के अनुरूप प्रकृति से भी तुम सम्बद्ध हो। इस प्रकृतिसम्बन्ध के कारण आध्यात्मिक आधिभौतिक एवं आधिदैविक सुख और दुःख होते हैं। इस सुख और दुःख के अनुभव से, इन सुख दुःख के हेतुभूत पदार्थों के अनुभव से तथा ऐसे पदार्थों के अनुभव से जिनसे सुख या दुःख तो नहीं होता किन्तु जो उपेक्षणीय विषय अवश्य हैं ज्ञान का संकोच होता है। यह ज्ञान का संकोच मेरे युगल चरणारविन्दों की ऐकान्तिक आत्यन्तिक परभक्ति, परज्ञान एवं परमभक्ति का विघ्न है जिसने तुम पर आघात किया है। किन्तु जैसे तैसे तुमने द्वयमन्त्र का उच्चारण कर लिया है। २

अतः केवल मेरी दया से मेरे चरणारविन्दयुगल की ऐकान्तिक, आत्यन्तिक, परभक्ति, परज्ञान एवं परमभक्ति के विघ्न पूर्णतया अपने कारणों के साथ नष्ट होंगे। ३

मत्प्रसादलब्ध-मच्चरणारविन्द - युगलैकान्तिकात्यन्तिकपर-भक्तिपरज्ञानपरमभक्तिः, ४

मत्प्रसादादेव साक्षात्कृतयथावस्थितमत्स्वरूपरूपगुणविभूति-लीलोपकरणविस्तारः, ५

अपरोक्षसिद्धमन्नियाम्यतामद्दास्यैकस्वभावात्मस्वरूपः, मदेकानुभवः, मद्दास्यैकप्रियः, परिपूर्णानवरतनित्यविशदतमानन्य-प्रयोजनानवधिकातिशयप्रियमदनुभवस्त्व, ६

तथाविधमदनुभवजनितानवधिकातिशय-प्रीतिकारिताशेषा-वस्थोचिताशेषशेषतैकरतिरूपनित्यकिङ्करो भव । (१८)

मेरी प्रसन्नता के फलस्वरूप तुमको मेरे युगलचरणारविन्द की ऐकान्तिक आत्यन्तिक परभक्ति, परज्ञान एवं परमभक्ति प्राप्त होगी ।.४

मेरी प्रसन्नता से ही मेरे स्वरूप, रूप, गुण, विभूति एवं लीलोपकरण के विस्तार का पूर्णतया साक्षात्कार करोगे । ५

प्रत्यक्षसिद्ध मेरी नियाम्यता तथा मेरी दास्यता ही तुम्हारा स्वरूप है। ऐसा मेरा अनुभव तुमको होगा। मेरे प्रति एक दास्यभाव से तुमको प्रीति होगी। परिपूर्ण अविच्छिन्न, नित्य विशदतम, अन्य प्रयोजन से रहित असीम अतिशय प्रीति रूप मेरा अनुभव होगा। ६

इस प्रकार के अनुभव के फलस्वरूप असीम एवं अतिशय प्रीति के द्वारा समस्त अवस्थाओं के अनुरूप परिपूर्ण शेषभावापन्न प्रीतियुक्त नित्य किंकर बनोगे ॥१८॥

एवम्भूतोऽसि । (१९)

आध्यात्मिकाधिभौतिकाधिदैविक–दुःखविघ्नगन्धरहितस्त्वं द्वयमर्थानुसन्धानेन सह सदैवं वक्ता यावच्छरीरपातमत्रैव श्रीरङ्गे सुखमास्स्व । (२०)

शरीरपातसमये तु केवलं मदीययैव दयया अतिप्रबुद्धः, मामेवावलोकयन्नप्रच्युतपूर्वसंस्कारमनोरथः, जीर्णमिव वस्त्रं सुखेनेमां प्रकृतिं स्थूलसूक्ष्मरूपां विसृज्य, तदानीमेव मत्प्रसाद-लब्धमच्चरणारविन्दयुगलैकान्तिकात्यन्तिक–परभक्तिपरज्ञान-परमभक्तिकृत–परिपूर्णानवरत–नित्यविशदतमानन्यप्रयोजना-

---

तुम ऐसे हो ॥१९॥

आध्यात्मिक, आधिभौतिक एवं आधिदैविक दुःखों से होने वाले विघ्नों की गन्ध भी तुम्हें न लगेगी। द्वयमन्त्र के अनुसन्धान के साथ सदा उच्चारण करते हुए जीवनपर्यन्त तुम यहीं श्री रंगधाम में ही सुखपूर्वक निवास करो ॥२०॥

शरीरपात (मृत्यु) के समय केवल मेरी ही दया से अत्यन्त बोधसम्पन्न होकर मेरा दर्शन करते हुए, भगवान् ही मेरे परम प्राप्य हैं इस शास्त्रजन्य अनुभव-संस्कार से प्राप्त मनोरथ के साथ जीर्णवस्त्र के समान सुखपूर्वक स्थूल और सूक्ष्म प्रकृति को छोड़कर तत्काल मेरी प्रसन्नता के फलस्वरूप मेरे युगलचरणारविन्दों की ऐकान्तिक, आत्यन्तिक, परभक्ति, परज्ञान एवं परमभक्ति के द्वारा परिपूर्ण, अविच्छिन्न, नित्य, विशदतम, अन्यप्रयोजन से रहित, असीम, अतिशय, प्रीतिरूप

नवधिकातिशय - प्रियमदनुभवस्त्वं तथाविधमदनुभवजनिता-नवधिकातिशय-प्रीतिकारिताशेषावस्थोचिताशेषशेषतैकरतिरूप-नित्यकिङ्करो भविष्यसि ॥२१॥

मा ते भूदत्र संशयः ॥२२॥

अनृतं नोक्तपूर्वं मे न च वक्ष्ये कदाचन ।
... ... रामो द्विर्नाभिभाषते ।
सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥
सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

मेरा अनुभव प्राप्तकर उसके फलस्वरूप असीम, अतिशय प्रीति के द्वारा समस्त अवस्थाओं के अनुरूप परिपूर्ण शेषभावापन्न प्रीति से युक्त नित्य किंकर होगे ॥२१॥

इसमें तुमको किसी प्रकार संशय नहीं होना चाहिये ॥२२॥

मैंने पहिले कभी असत्य नहीं कहा और न आगे कभी कहूंगा।

राम दो प्रकार की बातें नहीं कहता ।

जो शरणागत एक बार भी 'मैं आपका हूँ', यह कहकर मुझ से रक्षा-याचना करता है उसे मैं सम्पूर्ण भूतों से निर्भय कर देता हूँ । यह मेरा व्रत है ।

समस्त धर्मों (कर्मयोग, ज्ञानयोग एवं भक्तियोग) को छोड़कर तुम एकमात्र मेरी शरण में आजाओ । मैं तुमको समस्त पापों से मुक्त कर दूंगा । शोक न करो ।

इति मयैव ह्युक्तम् ॥२३॥

अतस्त्वं तव तत्त्वतो मज्ज्ञानदर्शनप्राप्तिषु निस्संशयस्सुखमास्स्व ॥२४॥

अन्त्यकाले स्मृतिर्या तु तव कैङ्कर्यकारिता ।
तामेनां भगवन्नद्य क्रियमाणां कुरुष्व मे ॥२५॥

इति श्रीभगवद्रामानुजविरचिते गद्यत्रये, प्रथमं
शरणागतिगद्यं सम्पूर्णम् ।

ये मेरे द्वारा कहा जा चुका है ॥२३॥

इसलिये तुम यथार्थ रूप से मेरे ज्ञान, दर्शन और प्राप्ति के विषय में संशय रहित होकर सुख से रहो ॥२४॥

भगवन् ! आपके कैंकर्य के फलस्वरूप जो स्मृति अन्तकाल में होती है उसे आज ही मुझे प्रदान करें ॥२५॥

॥ श्रीः ॥

॥ श्रीमते रामानुजाय नमः ॥

श्रीभगवद्रामानुज-विरचित-गद्यत्रये, द्वितीयं

॥ श्रीरङ्गगद्यम् ॥

चिदचित्परतत्त्वानां तत्त्वयाथार्थ्यवेदिने ।
रामानुजाय मुनये नमो मम गरीयसे ॥

स्वाधीनत्रिविधचेतनाचेतनस्वरूपस्थितिप्रवृत्तिभेदं क्लेश-कर्माद्यशेषदोषासंस्पृष्टं,—१

स्वाभाविकानवधिकातिशय-ज्ञान-बलैश्वर्यवीर्यशक्तितेजस्सौ-शील्यवात्सल्य - मार्दवार्जवसौहार्द - साम्यकारुण्यमाधुर्यगाम्भी-

---

चित् अचित् एवं परतत्व के यथार्थ तत्त्व के ज्ञाता पूज्यतम रामानुज मुनि के लिये मेरा नमस्कार है ।

जो बद्ध, मुक्त और नित्य तीन प्रकार के चेतन तथा अचेतन के स्वरूप स्थिति एवं प्रवृति को अधीन रखते हैं, क्लेश, कर्म आदि सम्पूर्ण दोष जिनका स्पर्श नहीं कर पाते,—१

स्वाभाविक, असीम, अतिशय, ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, शक्ति, तेज, सौशील्य, वात्सल्य, मृदुता, सरलता, सौहार्द, समता, करुणा, माधुर्य, गम्भीरता, उदारता, चतुरता, स्थिरता, धैर्य,

यौदार्यचातुर्यस्थैर्य - धर्यशौर्यपराक्रमसत्यकामसत्यसङ्कल्पकृतित्व-कृतज्ञताद्यसंख्येयकल्याणगुणगणौघमहार्णवं, —२

परब्रह्मभूतं, पुरुषोत्तमं, श्रीरङ्गशायिनम्, अस्मत्स्वामिनं, प्रबुद्धनित्यनियाम्यनित्यदास्यैकरसात्मस्वभावोऽहं, तदेकानुभवः, तदेकप्रियः— ३

परिपूर्णं, भगवन्तं, विशदतमानुभवेन निरन्तरमनुभूय, तदनुभवजनितानवधिकातिशय-प्रीतिकारिताशेषावस्थोचिताशेष-शेषतैकरतिरूपनित्यकिङ्करो भवानि । (१)

शौर्य, पराक्रम, सत्यकामता सत्यसंकल्पता, उपकारिता, कृत-ज्ञता आदि असंख्य कल्याणगुण समूह रूपी जलप्रवाह के महासागर हैं,—२

जो परब्रह्मभूत पुरुषोत्तम हैं, श्रीरंगधाम में शयन करने वाले हैं, मेरे स्वामी हैं—

उन भगवान् की नित्य नियाम्यता और नित्य दास्यभावना की एक रसता जीवात्मा का स्वभाव है ऐसा भली भाँति जान कर उनके ही अनुभव में संलग्न तथा उनको ही अपना प्रियतम मानकर,—३

नित्य विशदतम अनुभव के द्वारा उन परिपूर्ण भगवान् का अनुभव कर इस अनुभव के द्वारा असीम एवं अतिशय प्रीति प्राप्त कर तथा इस प्रीति के फलस्वरूप समस्त अवस्थाओं के अनुरूप परिपूर्ण शेषभावापन्न नित्य किंकर बनूँ ॥१॥

स्वात्मनित्यनियाम्यनित्यदास्यैकरसात्म-स्वभावानुसन्धान-पूर्वकभगवदनवधिकातिशयस्वाम्यद्यखिल-गुणगणानुभवजनितानवधिकातिशय-प्रीतिकारिताशेषावस्थोचिताशेषशेषतैकरतिरूप-नित्यकैङ्कर्यप्राप्त्युपायभूत॰क्ति - तदुपाय – सम्यज्ज्ञानतदुपाय-समीचीनक्रिया - तदनुगुण – सात्विकतास्तिक्यादि – समस्तात्म-गुणविहीनः, — १

दुरुत्तरानन्ततद्विपर्यय-ज्ञानक्रियानुगुणानादिपापवासनामहार्णवान्तर्निमग्नः, २

भगवान् की नित्य नियाम्यता और दास्य भावना की एकरसता जीवात्मा का स्वभाव है। इस स्वभाव के अनुसन्धान (चिन्तन) के साथ भगवान् का इस प्रकार अनुभव होना चाहिये कि उनके असीम एवं अतिशय स्वामित्व आदि गुण समूह का अनुभव असीम अतिशय प्रीति का प्रदाता है। इस प्रीति द्वारा समस्त अवस्थाओं के अनुरूप परिपूर्ण शेष-भावापन्न प्रीतियुक्त नित्य कैंकर्य प्राप्त होता है। ऐसे कैंकर्य की प्राप्ति का उपाय भक्ति है। इसका साधन है सम्यक् ज्ञान। सम्यक् ज्ञान को प्राप्त करने का उपाय है समुचित क्रिया। यह क्रिया साधक में सात्विकता, आस्तिकता आदि समस्त आत्म-गुणों के रहने पर ही सम्भव होती है। किन्तु मैं इन समस्त आत्मगुणों से रहित हूँ। १

इसके अतिरिक्त विपरीत ज्ञान, क्रिया एवं आत्मगुणों के कारण अनादि वासना के पार जाने में अत्यन्त दुस्तर अनन्त महासागर में डूबा हुआ हूँ। २

तिलतैलवद्दारुवह्निवद्दुर्विवेचत्रिगुण - क्षणक्षरणस्वभावा-
चेतनप्रकृतिव्याप्तिरूपदुरत्ययभगवन्मायातिरोहितस्वप्रकाशः, ३
अनाद्यविद्यासञ्चितानन्ताशक्यविस्रंसनकर्मपाशप्रग्रथितः, ४
अनागतानन्तकालसमीक्षयाऽप्यदृष्टसन्तारोपायः, निखिलजन्तु-
जातशरण्य ! श्रीमन् ! नारायण ! तव चरणारविन्दयुगलं
शरणमहं प्रपद्ये । (२)

एवमवस्थितस्याप्यर्थित्वमात्रेण परमकारुणिको भगवान्

जिस प्रकार तिलमें तेल और काष्ठ में अग्नि स्थित है उसी प्रकार आत्मा प्रकृति में स्थित है। इस प्रकृति का विश्लेषण करना अत्यन्त कठिन है। इसमें सत्व, रज और तम तीनों गुणों की स्थिति है। प्रतिक्षण क्षरण का होते रहना इसका स्वभाव है। यह अचेतन है। यह भगवान् की दुरत्यया (दुर्लंघ्य) माया है। इसी के सम्बन्ध से मेरा स्वभाविक ज्ञान का प्रकाश तिरोहित हो गया है। ३

मैं अनादि अविद्या द्वारा संचित अनन्त एवं अटूट कर्मपाश से जकड़ा हुआ हूँ। ४

भावी अनन्तकाल की प्रतीक्षा करने पर भी मुझे अपने उद्धार का कोई उपाय नहीं दिखाई देता।

इसलिये जीवमात्र को शरण देने वाले श्रीमन्नारायण ! मैं आपके युगल चरणकमलों की शरण ग्रहण करता हूँ ॥२॥

ऐसी दशा स्थित होने पर भी प्रार्थना करने मात्र से परम कारुणिक भगवान् अपने अनुभव से प्रकट हुई प्रीति के

स्वानुभवप्रीत्योपनीतैकान्तिकात्यन्तिक – नित्यकैङ्कर्यैकरतिरूप-नित्यदास्यं दास्यतीति विश्वासपूर्वकं भगवन्तं नित्यकिङ्करतां प्रार्थये । (३)

तवानुभूतिसंभूतप्रीतिकारितदासताम् ।
देहि मे कृपया नाथ ! न जाने गतिमन्यथा ।। (४)

सर्वावस्थोचिताशेषशेषतैकरतिस्तव ।
भवेयं पुण्डरीकाक्ष ! त्वमेवैवं कुरुष्व माम् ।। (५)

एवंभूततत्त्वयाथात्म्यावबोधतदिच्छारहितस्यापि एतदु-

द्वारा उत्पादित ऐकान्तिक आत्यन्तिक नित्य कैंकर्य विषयक एकमात्र अनुराग स्वरूप नित्य दास्य प्रदान करेंगे ही इस विश्वास के साथ भगवान् से नित्य किंकरता की याचना करता हूँ ।।३।।

नाथ ! आपके स्वरूप के अनुभव से प्रकट हुई प्रीति द्वारा उत्पादित दास्यभाव मुझे कृपया प्रदान करें । इसके अतिरिक्त मेरी अन्य गति नहीं है ।।४।।

पुण्डरीकाक्ष ! मैं सभी अवस्थाओं में उचित सम्पूर्ण शेषभावविषयक अनन्य प्रीति से युक्त होऊँ । आप मुझे ऐसा ही बनाइये ।।५।।

इस प्रकार तत्त्वसाक्षात्कार एवं इसकी जिज्ञासा से रहित मेरे मन को इस शरणागति के उच्चारण मात्र से ही आप

च्चारणमात्रावलम्बनेन उच्यमानार्थपरमार्थनिष्ठं मे मनस्त्व-
मेवाद्यैव कारय । (६)

अपारकरुणाम्बुधे ! अनालोचितविशेषाशेषलोकशरण्य ! प्रणतार्तिहर ! आश्रितवात्सल्यैकमहोदधे ! अनवरतविदित-निखिलभूतजातयाथात्म्य ! सत्यकाम ! सत्यसकंल्प ! आपत्सख ! काकुत्स्थ ! श्रीमन् ! नारायण ! पुरुषोत्तम ! श्रीरङ्गनाथ ! मम नाथ ! नमोऽस्तु ते । (७)

इति श्रीभगवद्रामानुजविरचिते गद्यत्रये, द्वितीयं

श्रीरङ्गगद्यं सम्पूर्णम् ।

आज ही उच्यमान अर्थ के परमार्थ (उपाय और उपेय के अनुभव) से सम्पन्न बना दीजिये ॥६॥

अपार करुणा के सागर, व्यक्ति विशेष का विचार किये बिना ही सम्पूर्ण जगत को शरण देने वाले शरण्य, शरणागत के दुःखों को दूर करने वाले, शरणागतवत्सलता के एक मात्र महा समुद्र, सम्पूर्ण भूतों के यथार्थ स्वरूप का निरन्तर ज्ञान रखने वाले, सत्य काम, सत्य संकल्प, विपत्ति के एकमात्र सखा, ककुत्स्थ कुल के गौरव, श्रीमन् नारायण, पुरुषोत्तम श्रीरङ्गनाथ ! मेरे नाथ ! मैं आपकी शरण हूँ ।

[शरणागति को आप स्वीकार करें । अथवा सर्वत्र कैंकर्य प्रदान करें ।

ऐसा ही हो] ॥७॥

॥ श्रीः ॥

॥ श्रीमते रामानुजाय नमः ॥

श्रीभगवद्रामानुज-विरचित-गद्यत्रये, तृतीयं

॥ श्रीवैकुण्ठगद्यम् ॥

यामुनार्यसुधाम्भोधिमवगाह्य यथामति ।
आदाय भक्तियोगाख्यं रत्नं सन्दर्शयाम्यहम् ॥ (१)

स्वाधीनत्रिविधचेतनाचेतनस्वरूपस्थितिप्रवृत्तिभेदं, क्लेश-कर्माद्यशेषदोषासंस्पृष्टम्, १

स्वाभाविकानवधिकातिशय-ज्ञानबलैश्वर्यवीर्यशक्तितेजःप्रभृत्यसंख्येयकल्याणगुणगणौघमहार्णवम्, २

श्रीयामुनाचार्यरूपी सुधासागर में अवगाहन कर मैं अपनी बुद्धि के अनुसार भक्तियोग अर्थात् भगवदनुसन्धान रूप रत्न लाकर दिखा रहा हूँ ॥१॥

जो बद्ध, मुक्त और नित्य तीन प्रकार के चेतन तथा अचेतन के स्वरूप, स्थित एवं प्रवृत्ति को अपने अधीन रखते हैं, क्लेश, कर्म आदि सम्पूर्ण दोष जिनका स्पर्श नहीं कर पाते । १

जो स्वाभाविक, असीम, अतिशय, ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, शक्ति, तेज आदि असंख्य कल्याणगुण समूहरूपी जलप्रवाह के महासागर हैं । २

परमपुरुषं, भगवन्तं, नारायणं, स्वामित्वेन सुहृत्त्वेन गुरुत्वेन च परिगृह्य, ३

ऐकान्तिकात्यन्तिक – तत्पादाम्बुजद्वयपरिचर्यैकमनोरथः तत्प्राप्तये च तत्पादाम्बुजद्वयप्रपत्तेरन्यन्न मे कल्पकोटिसहस्रेणापि साधनमस्तीति मन्वानः, तस्यैव भगवतो नारायणस्य, अखिलसत्त्वदयैकसागरस्य, अनालोचितगुणागुणाखण्डजनानुकूलामर्यादशीलवतः, स्वाभाविकानवधिकातिशयगुणवत्तया देवतिर्यङ्मनुष्याद्यखिलजनहृदयानन्दनस्य, आश्रितवात्सल्यैकजलधेः, भक्तजनसंश्लेषैकभोगस्य, नित्यज्ञानक्रियैश्वर्यादिभोगसामग्रीसमृद्ध-

---

ऐसे परमपुरुष भगवान् नारायण को स्वामी, सुहृत् एवं गुरु के रूप में ग्रहण कर। ३

(साधक) उनके दोनों चरणकमलों की ऐकान्तिक एवं आत्यन्तिक भाव से सम्पन्न परिचर्या (सेवा) की अभिलाषा करे और उस सेवा को प्राप्त करने के लिये उन चरणकमलों की शरणागति के सिवा मेरे लिये सहस्र कोटि कल्पों तक भी दूसरा कोई साधन नहीं है, ऐसा विश्वास करे। जो समस्त जीवों के प्रति उमड़नेवाली दया के एकमात्र सागर हैं, जो गुण अवगुण का विचार किये बिना ही सब लोगों के अनुकूल हैं एवं असीम शील से सम्पन्न हैं, स्वाभाविक असीम, अतिशय गुणों से युक्त होने के कारण देवता, पशु–पक्षी, मनुष्य आदि समस्त जीवों के हृदय को आनन्द प्रदान करने वाले हैं, आश्रितजनों के प्रति वत्सलता के एकमात्र समुद्र हैं, भक्तजनों से संयोग ही

स्य, महाविभूतेः, श्रीमतश्चरणारविन्दयुगलम् अनन्यात्मसञ्जीवनेन तद्गतसर्वभावेन शरणमनुव्रजेत्। (२)

ततश्च प्रत्यहम् आत्मोज्जीवनाय एवमनुस्मरेत्। (३)

चतुर्दशभुवनात्मकमण्डं दशगुणितोत्तरं चावरणसप्तकं समस्तं कार्यकारणजातमतीत्य, १

वर्तमाने परमव्योमशब्दाभिधेये ब्रह्मादीनां वाङ्मनसागोचरे श्रीमति वैकुण्ठे दिव्यलोके सनकविधिशिवादिभिरप्यचिन्त्यस्व-

---

जिनका भोग है, ज्ञान, क्रिया ऐश्वर्य आदि भोग सामग्री से जो नित्य सम्पन्न हैं, जो महावैभवशाली हैं उन श्रियःपति भगवान् के दोनों चरणकमलों को अनन्यभाव से अपना जीवनाधार मानकर तथा सम्पूर्ण भाव लगाकर उनकी शरण ग्रहण करे ॥२॥

इसके पश्चात् अपने आत्मोज्जीवन के निमित्त प्रतिदिन इस प्रकार स्मरण करे ॥३॥

इस ब्रह्माण्ड में चौदह भुवन हैं। इसके उत्तरोत्तर दशगुणित सात आवरण हैं। यह समस्त कार्य-कारण रूप जगत है। इससे परे है वैकुण्ठधाम। १

परम व्योम इसी का एक नाम है। यह ब्रह्मा आदि की मन-वाणी के लिये अगोचर है। लक्ष्मी के वैभव से सम्पन्न यह वैकुण्ठ दिव्य लोक है। यह वैकुण्ठधाम ऐसे असंख्य दिव्य

भावैश्वर्यैर्नित्यसिद्धैरनन्तैर्भगवदानुकूल्यैकभोगैः दिव्यपुरुषैर्महात्मभिरापूरिते तेषामपीयत्परिमाणम् इयदैश्वर्यम् ईदृशस्वभावम् इति परिच्छेत्तुमयोग्ये, २

दिव्यावरणशतसहस्रावृते दिव्यकल्पकतरूपशोभिते दिव्योद्यानशतसहस्रकोटिभिरावृते अतिप्रमाणे दिव्यायतने, ३

कस्मिंश्चिद्विचित्रदिव्यरत्नमये दिव्यास्थानमण्डपे दिव्यरत्नस्तम्भशतसहस्रकोटिभिरुपशोभिते दिव्यनानारत्नकृतस्थलविचित्रिते दिव्यालङ्कारालङ्कृते, ४

महात्मा पुरुषों से परिपूर्ण है जिनका स्वभाव एवं ऐश्वर्य सनक, ब्रह्मा, शिव आदि के लिये भी अचिन्त्य है। उन दिव्य पुरुषों का भोग एकमात्र भगवान् की अनुकूलता ही है। उनका परिणाम इतना है, ऐश्वर्य इतना है, स्वभाव ऐसा है इत्यादि बातों का निर्धारण करना भी अशक्य है। २

यह दिव्यधाम एक लाख दिव्य आवरणों से आवृत है। दिव्य कल्पवृक्षों से सुशोभित है। शतसहस्रकोटि दिव्य उद्यानों से घिरा हुआ है। अति विस्तृत है। दिव्य आयतन युक्त है। ३

वहाँ एक दिव्य आस्थानमण्डप (सभा भवन) है जो विचित्र एवं रत्नमय है। वह शतसहस्रकोटि दिव्य रत्नमय स्तम्भों से सुशोभित है। वहाँ की भूमि नानाप्रकार के दिव्य रत्नों से जटित है। वह सभाभवन दिव्य अलंकारों से अलंकृत है। ४

परितः पतितैः पतमानैः पादपस्थैश्च नानागन्धवर्णैर्दिव्य-पुष्पैश्शोभमानैर्दिव्यपुष्पोपवनैरुपशोभिते, ५

सङ्कीर्णपारिजातादिकल्पद्रुमोपशोभितैरसङ्कीर्णैश्च कैश्चि-दन्तःस्थपुष्परत्नादिनिर्मितदिव्यलीलामण्डप-शतसहस्रोपशोभितै-स्सर्वदा अनुभूयमानैरपि अपूर्ववदाश्चर्यमावहद्भिः क्रीडाशैलशत-सहस्रै रलङ्कृतैः, ६

कैश्चिन्नारायणदिव्यलीलाऽसाधारणैः कैश्चित्पद्मवनालया-दिव्यलीलाऽसाधारणैस्साधारणैश्च कैश्चिच्छुकशारिकामयूर-

---

अनेकानेक दिव्य उपवनों से सुशोभित है। उन उपवनों में भाँति भाँति की सुगन्ध से युक्त रंगविरंगे दिव्य पुष्प सुशो-भित हैं जिनमें से कुछ नीचे गिर गये हैं, कुछ वृक्षों से नीचे गिरते रहते हैं, तथा कुछ उन वृक्षों की डालियों पर ही लगे हैं। ५

ये उपवन कहीं घने तथा कहीं विरल पारिजात आदि कल्पवृक्षों में सुशोभित हैं। ये उद्यान पुष्प, रत्न आदि से निर्मित लाखों दिव्य लीलामण्डपों से सुशोभित हैं। सर्वदा अनुभव किये जाने पर भी नित्य नवीन जैसे आश्चर्यजनक मालूम पड़ते हैं। ये उद्यान लाखों क्रीडापर्वतों से अलंकृत हैं।६

इनमें से कुछ नारायण की दिव्य लीला के असाधारण स्थल हैं, कुछ लक्ष्मी की दिव्य लीला के असाधारण स्थल हैं तथा कुछ साधारण स्थल हैं। शुक, सारिका, मयूर और कोकिल

कोकिलादिभिः कोमलकूजितैराकुलैर्दिव्योद्यानशतसहस्रै रावृते, ७

मणिमुक्ताप्रवालकृत — सोपानैर्दिव्यामलामृतरसोदकै-र्दिव्याण्डजवरैरतिरमणीयदर्शनैरतिमनोहर – मधुरस्वरैराकुलैः अन्तःस्थमुक्तामय - दिव्यक्रीडास्थानोपशोभितैर्दिव्यसौगन्धिक-वापीशतसहस्रै र्दिव्यराजहंसावलीविराजतैरावृते, ८

निरस्तातिशयानन्दैकरसतया चानन्त्याच्च प्रविष्टानुन्मा-दयद्भिः क्रीडोद्देशैर्विराजिते तत्र तत्र कृतदिव्यपुष्पपर्यङ्कोपशोभिते

आदि दिव्य पक्षियों के कोमल कलरवों से व्याप्त शतसहस्रकोटि दिव्य उद्यान आस्थानमण्डप को घेरे हुए हैं। ७

लाखों दिव्य सुगन्धियुक्त बावलियाँ आस्थानमण्डप को घेरे हुए हैं। इन बावलियों में उतरने के लिये मणि, मुक्ता और मूंगों की सीढ़ियाँ हैं। इनमें दिव्य निर्मल अमृत रस भरा है। दिव्यपक्षी, जो देखने में अत्यन्त सुन्दर लगते हैं, जिनके मधुर स्वर अति मनोहर लगते हैं, इन बावलियों में विद्यमान रहते हैं। उनके भीतर मुक्तामय दिव्य क्रीड़ास्थान बने हुए हैं। दिव्य राजहंसों की पंक्तियाँ भी यहाँ रहती हैं। ८

आस्थानमण्डप में कितने ही क्रीडास्थल हैं जो सर्वाधिक आनन्दैकरसस्वभाव एवं अनन्त होने के कारण प्रवेश करने-वालों को आनन्दोन्माद से उन्मत्त कर देते हैं। आस्थानमण्डप के विभिन्न भागों में दिव्य पुष्पों के पर्यंक शोभायमान हैं। नाना प्रकार के पुष्पों का रसपान कर उन्मत्त भ्रमरों की

नानापुष्पासवास्वादमत्तभृङ्गावलीभिरुद्गीयमानदिव्यगान्धर्वेण-पूरिते चन्दनागरुकर्पूरदिव्यपुष्पावगाहिमन्दानिलासेव्यमाने, ९

मध्ये पुष्पसञ्चयविचित्रिते महति दिव्ययोगपर्यङ्के अनन्त-भोगिनि, १०

श्रीमद्वैकुण्ठैश्वर्यादिदिव्यलोकम् आत्मकान्त्या विश्वमाप्याययन्त्या शेषशेषाशनादिसर्वपरिजनं भगवतस्तत्तदवस्थोचितपरिचर्यायामाज्ञापयन्त्या शीलरूपगुणविलासादिभिरात्मानुरूपया श्रियासहासीनम्, ११

पंक्तियाँ दिव्य संगीत की ध्वनि से मण्डप को पूर्ण करती हैं। चन्दन, अगर, कर्पूर और दिव्य पुष्पों की सुगन्ध से युक्त मन्द-मन्द वायु सेवन करने के लिये प्राप्त रहती है। ९

इस आस्थानमण्डप के मध्य में अनन्त शेष विराजमान हैं। उनके अंक में महान् दिव्य योगपर्यङ्क है जो पुष्पराशि के संचय से विचित्ररूप से सुशोभित है। १०

उस पर भगवान् श्री देवी के साथ विराजमान हैं। श्री देवी का शील, रूप, गुण, विलास आदि भगवान् के अनुरूप है। वे श्री देवी श्रीमद्वैकुण्ठ, ऐश्वर्य आदि से युक्त दिव्य-लोक को तथा विश्व को अपनी कांति से आप्लावित करती हैं और शेष, विष्वक्सेन, आदि समस्त परिजनों को भगवान् की सर्वावस्थाओं के अनुरूप सेवा की आज्ञा प्रदान करती रहती हैं। ११

प्रत्यग्रोन्मीलितसरसिजसदृशनयनयुगलं स्वच्छनीलजीमूत-सङ्काशं, अत्युज्ज्वलपीतवाससं, स्वया प्रभया अतिनिर्मलया अतिशीतलया (अतिकोमलया) स्वच्छया माणिक्याभया कृत्स्नं जगद्भासयन्तम् । १२

अचिन्त्यदिव्याद्भुत - नित्ययौवन - स्वभावलावण्यमयामृत-सागरम् अतिसौकुमार्यादीषत्प्रस्विन्नवदालक्ष्यमाणललाटफलक-दिव्यालकावलीविराजितम्, १३

प्रबुद्धमुग्धाम्बुजचारुलोचनं, सविभ्रमभ्रूलतमुज्ज्वलाधरम् ।
शुचिस्मितं, कोमलगण्डमुन्नसं··· ··· ··· ··· ··· ॥
उदग्रपीनांसविलम्बिकुण्डलालकावलीबन्धुरकम्बुकन्धरम् ।

भगवान् के दोनों नेत्र तुरन्त खिले हुए कमलों के समान हैं। उनका दिव्यमंगल विग्रह निर्मल श्याम मेघ के समान है। वे अत्यन्त उज्ज्वल पीताम्बर धारण किये हैं। वे अत्यन्त निर्मल, अत्यन्त शीतल, [अत्यन्त कोमल] स्वच्छ माणिक्य की सी आभा से सम्पूर्ण जगत को प्रकाशित करते हैं। १२

वे अचिन्त्य, दिव्य, अद्भुत, नित्य-यौवन, स्वभाव एवं लावण्यमय अमृत के समुद्र हैं। अत्यन्त सुकुमारता के कारण उनका ललाट कुछ पसीने की बूँदों से युक्त दिखायी देता है वहाँ तक फैली हुई उनकी दिव्य अलकावली शोभायमान है। १३

भगवान् के नेत्र विकसित कोमल कमल के समान सुन्दर हैं, उनकी भ्रूलता विभ्रम विलास से युक्त है, उनके

प्रियावतंसोत्पलकर्णभूषणश्लथालकाबन्धविमर्दशंसिभिः ॥
चतुर्भिराजानुविलम्बिभिर्भुजैर्विराजितम् १४

अतिकोमलदिव्यरेखालङ्कृताताम्रकरतलं, दिव्याङ्गुलीयकविराजितम्, अतिकोमलदिव्यनखावलीविराजितातिरक्ताङ्गुलीभिरलङ्कृतं, तत्क्षणोन्मीलितपुण्डरीकसदृशचरणयुगलम्, अतिमनोहरकिरीटमकुटचूडावतंसमकर - कुण्डलग्रैवेयकहारकेयूर-कटक-श्रीवत्सकौस्तुभमुक्तादामोदरबन्धन - पोताम्बरकाञ्चीगुण-

---

अधर उज्ज्वल हैं, उनकी मुस्कान पवित्र है, उनके कपोल कोमल हैं, उनकी नासिका ऊँची है..........।

ऊँचे और मांसल कंधों पर लटकी हुए लटों और कुण्डलों के कारण भगवान् की शंख सरीखी ग्रीवा सुन्दर लगती है।

श्रीदेवी के अवतंस, उत्पल, कुण्डल, शिथिल अलकावली तथा नीवी का विमर्दन करने वाली घुटनों तक लम्बी चार भुजायें शोभा दे रही हैं।१४

उनकी हथेलियाँ अत्यन्त कोमल दिव्य रेखाओं से अलंकृत और लाल रंग की हैं। अंगुलियों में दिव्य मुद्रिकाएँ शोभा देती हैं। दिव्य नखोंवाली अत्यन्त कोमल सुशोभित लाल अंगुलियाँ उनके कर कमलों को अलंकृत करती हैं। उनके दोनों चरण तुरन्त खिले हुए कमलों के समान हैं। वे अत्यन्त मनोहर किरीट, मकुट, चूड़ामणि, मकराकृत कुण्डल, कण्ठहार, केयूर, कटक, श्रीवत्स, कौस्तुभ, मुक्तादाम, कटिबन्ध, पीताम्बर,

नूपुरादिभिरत्यन्तसुखस्पर्शैर्दिव्यगन्धैर्भूषणैर्भूषितं, श्रीमत्या वैजयन्त्या वनमालया विराजितं, शङ्खचक्रगदासिशार्ङ्गादि-दिव्यायुधैस्सेव्यमानम्, १५

स्वसङ्कल्पमात्रावक्लृप्तजगज्जन्मस्थितिध्वंसादिके श्रीमति विष्वक्सेने न्यस्तसमस्तात्मैश्वर्यम्, १६

वैनतेयादिभिस्स्वभावतोनिरस्तसमस्त - सांसारिकस्वभावै-र्भगवत्परिचर्याकरणयोग्यैर्भगवत्परिचर्यैकभोगैर्नित्य-सिद्धैरनन्तै-र्यथायोगं सेव्यमानम्, १७

काञ्चीसूत्र, और नूपुर आदि अत्यन्त सुखद स्पर्श वाले दिव्य गन्ध युक्त आभूषणों से विभूषित हैं। श्रीमती वनमाला शोभा दे रही है। शङ्ख, चक्र, गदा, असि और शार्ङ्ग धनुष आदि दिव्य आयुध उनकी सेवा में उपस्थित रहते हैं। १५

अपने संकल्पमात्र से सम्पन्न होने वाले संसार की सृष्टि, पालन और संहार आदि के लिये भगवान् ने अपना ऐश्वर्य श्रीमान् विष्वक्सेन को समर्पित कर रक्खा है। १६

जिनमें स्वभाव से ही समस्त सांसारिक भावों का अभाव है, जो भगवान् की सेवा करने के योग्य हैं तथा भगवान् की सेवा ही जिनका एकमात्र भोग है ऐसे गरुड आदि नित्य सिद्ध अनन्त पार्षद यथावसर भगवान् की सेवा में संलग्न रहते हैं। १७

आत्मभोगेना[न]नुसंहितपरादिकालं दिव्यामलकोमला-
वलोकनेन विश्वमाह्लादयन्तम्, १८

ईषदुन्मीलितमुखाम्बुजोदरविनिर्गतेन दिव्याननारविन्द-शोभाजनकेन दिव्यगाम्भीर्यौदार्यसौन्दर्यमाधुर्याद्यनवधिकगुणगण-विभूषितेन अतिमनोहरदिव्यभावगर्भेण दिव्यलीलालापामृतेन अखिलजनहृदयान्तराण्यापूरयन्तं भगवन्तं नारायणं ध्यानयोगेन दृष्ट्वा, १६

[ततो] भगवतो नित्यस्वाम्यम्, आत्मनो नित्यदास्यं च यथावस्थितमनुसन्धाय, २०

जिनके आत्मभोग को काल की सीमाऐं सीमित नहीं कर पातीं। ऐसे भगवान् अपनी दिव्य निर्मल एवं कोमल दृष्टि से विश्व को आह्लादित करते हैं। १८

उनके किञ्चित् खुले हुए मुखारविन्द के भीतर से निकले हुए दिव्य अमृतमय वचन दिव्य मुखकमल की शोभा बढ़ाते हैं, वे दिव्य गम्भीरता, उदारता, मधुरता आदि पूर्ण गुणसमुदाय से विभूषित्त हैं, अत्यन्त मनोहर भाव से युक्त हैं सब लोगों का हृदय आनन्द से परिपूर्ण करते हैं। ऐसे भगवान् नारायण का ध्यानयोग के द्वारा दर्शन कर। १६

भगवान् के नित्य स्वामित्व तथा अपनी नित्य दासता का ठीक ठीक अनुसन्धान कर इस प्रकार अभिलाषा करे—२०

कदाऽहं भगवन्तं, नारायणं मम कुलनाथं मम कुलदैवतं मम कुलधनं मम भोग्यं मम मातरं मम पितरं मम सर्वं साक्षात्करवाणि चक्षुषा; २१

कदाऽहं भगवत्पादाम्बुजद्वयं शिरसा धारयिष्यामि; २२

कदाऽहं भगवत्पादाम्बुजद्वयपरिचर्याशया निरस्तसमस्तेतर-भोगाशः अपगतसमस्तसांसारिकस्वभावः तत्पादाम्बुजद्वयं प्रवेक्ष्यामि; २३

कदाऽहं भगवत्पादाम्बुजद्वयपरिचर्याकरणयोग्यः तदेक-भोगस्तत्पादौ परिचरिष्यामि; २४

मैं कब भगवान् नारायण का जो मेरे कुल के नाथ हैं, मेरे कुल के देवता हैं, मेरे कुलधन हैं, मेरे माता हैं, मेरे पिता हैं, मेरे सर्वस्व हैं, अपने नेत्रों से साक्षात् करूँगा। २१

मैं कब भगवान् के दोनों चरणकमलों को शिर पर धारण करूंगा। २२

मैं कब भगवान् के दोनों चरणकमलों की परिचर्या की आशा से समस्त इतर पदार्थों के भोग की आशा त्याग सकूंगा, सम्पूर्ण सांसारिक भावों से निवृत्त हो सकूँगा, तथा भगवान् के दोनों चरण कमलों में प्रवेश पा सकूँगा। २३

कब मैं भगवान् के दोनों चरणकमलों की परिचर्या के योग्य बनकर तथा उनको ही अपना भोग्य मानकर उनकी परिचर्या में लगूंगा। २४

कदा मां भगवान् स्वकीयया अतिशीतलया दृशा अवलोक्य स्निग्धगम्भीरमधुरया गिरा परिचर्यायामाज्ञापयिष्यति ! २५

इति भगवत्परिचर्यायाम् आशां वर्धयित्वा, तयैवाशया तत्प्रसादोपबृंहितया भगवन्तमुपेत्य, दूरादेव भगवन्तं, शेषभोगे श्रिया सहासीनं, वैनतेयादिभिः सेव्यमानम्, २६

"समस्तपरिवाराय श्रीमते नारायणाय नमः" २७

इति प्रणम्य, उत्थायोत्थाय, पुनः पुनः प्रणम्य, अत्यन्त-साध्वसविनयावनतो भूत्वा, भगवत्पार्षदगणनायकैर्द्वारपालैः

कब भगवान् अपनी अतिशीतल दृष्टि से मुझे देखकर स्निग्ध गम्भीर, मधुर वाणी से परिचर्या के लिये मुझे आज्ञा देंगे। २५

इस प्रकार भगवान् की परिचर्या में आशासंवर्धन करते हुए, उसी आशा से भगवान् की प्रसन्नता के फलस्वरूप भगवान् को प्राप्त कर दूर से ही भगवान् को शेषपर्यंक पर लक्ष्मी के साथ विराजमान और गरुड़ आदि पार्षदों के द्वारा सेवित समस्त परिवार समेत श्रीदेवी समेत नारायण के लिये नमस्कार है, २६-२७

इस प्रकार प्रणाम करे उठ उठकर बारम्बार प्रणाम करे, अत्यन्त भय एवं विनय से झुककर भगवान् के पार्षदगण नायकों एवं द्वारपालों द्वारा कृपापूर्वक एवं स्नेहगर्भित दृष्टि से देखा

कृपया स्नेहगर्भया दृशाऽवलोकितः, सम्यगभिवन्दितैस्तैरेवानुमतः भगवन्तमुपेत्य, श्रीमता मूलमन्त्रेण, २८

"भगवन् ! माम् ऐकान्तिकात्यन्तिकपरिचर्याकरणाय परिगृह्णीष्व" इति याचमानः प्रणम्य, आत्मानं भगवते निवेदयेत्। (४)

ततो भगवता स्वयमेवात्मसञ्जीवनेनामर्यादशीलवताऽतिप्रेमान्वितेनावलोकनेनावलोक्य सर्वदेशसर्वकालसर्वावस्थोचितात्यन्तशेषभावाय स्वीकृतोऽनुज्ञातश्च अत्यन्तसाध्वसविनयावनतः किङ्कुर्वाणः कृताञ्जलिपुटो भगवन्तमुपासीत । (५)

जाकर उनको ठीक ठीक प्रणाम करे तथा उनकी अनुमति प्राप्त कर भगवान् के समीप पहुँचे । फिर श्रीमूल मन्त्र के द्वारा—२८

"भगवन् ! मुझे ऐकान्तिक एवं आत्यन्तिक परिचर्या के निमित्त ग्रहण करें," इस प्रकार याचना करते हुए प्रणाम करे और अपने आपको भगवान् के प्रति निवेदन करे ॥४॥

इसके पश्चात् भगवान् स्वयं ही आत्मा को जीवनदान देने वाले असीम शील एवं अत्यन्त प्रेममयी दृष्टि से देखकर सार्वदेशिक सार्वकालिक एवं सभी अवस्थाओं के अनुरूप अत्यन्त शेषभाव के निमित्त स्वीकार करते हैं । भगवान् की अनुज्ञा को प्राप्तकर अत्यन्त भय और विनय से अवनत होकर तथा अब क्या करना है यह सोचते हुए हाथ जोड़े हुए भगवान् की उपासना करे ॥५॥

ततश्चानुभूयमानभावविशेषः निरतिशयप्रीत्या अन्यत् किञ्चित्कर्तुं द्रष्टुं स्मर्तुमशक्तः पुनरपि शेषभावमेव याचमानः भगवन्तमेव अविच्छिन्नस्रोतोरूपेणावलोकनेनावलोकयन्नासीत।(६)

ततो भगवता स्वयमेवात्मसञ्जीवनेनावलोक्य सस्मितमाहूय समस्तक्लेशापहं निरतिशयसुखावहम् आत्मीयं श्रीमत्पादारविन्दयुगलं शिरसि कृतं ध्यात्वा अमृतसागरान्तर्निमग्नसर्वावयवः सुखमासीत। (७)

इति श्रीभगवद्रामानुजविरचिते गद्यत्रये, तृतीयं
श्रीवैकुण्ठगद्यं सम्पूर्णम्।

इसके पश्चात् विशेषभाव के साथ भगवान् का अनुसन्धान करते हुए निरतिशय प्रेम के कारण अन्य कुछ भी करने देखने या स्मरण करने में असमर्थता का अनुभव करे और शेषभाव की ही याचना करते हुए अविच्छिन्न प्रवाहरूपिणी दृष्टि के द्वारा भगवान् का ही दर्शन करता रहे ॥६॥

इसके पश्चात् भगवान् स्वयं ही आत्मा को जीवनदान करने वाली दृष्टि से देखकर मन्द मुस्कराहट के साथ बुलाकर समस्त क्लेशों को दूर करने वाले और निरतिशय सुख की प्राप्ति कराने वाले अपने युगलचरणारविन्दों को मेरे मस्तक पर रख रहे हैं ऐसा ध्यान कर आनन्दामृतमहासागर में सम्पूर्ण रूप से निमग्न होकर सुख का अनुभव करे ॥७॥

लक्ष्मीपतेर्यतिपतेश्च दयैकधाम्नोः
योऽसौ पुरा समजनिष्ट जगद्धितार्थम् ।
प्राच्यं प्रकाशयतु वः परमं रहस्यं
संवाद एष शरणागतिमन्त्रसारः ॥

—श्रीवेदान्तदेशिक

दया के धाम श्रीलक्ष्मीपति और यतिपति श्रीरामानुजाचार्य का जगत के कल्याणार्थ हुआ यह संवाद जो शरणागति का सार है प्राचीन परम रहस्य को प्रकाशित करे।

शारीरकेऽपि भाष्ये या गोपिता शरणागतिः ।
अत्र गद्यत्रये व्यक्तां तां विद्यां प्रणतोऽस्म्यहम् ॥

श्रीभाष्यकार ने श्रीभाष्य में जिस शरणागति को गुप्त रक्खा वही गद्यत्रय में प्रकट रूप से विद्यमान है। उस शरणागति विद्या को मैं प्रणाम करता हूँ।

पाठभेद सूची

		पृष्ठ	पंक्ति
अनन्तगुण	अनन्तकल्याणगुण	५	८
मत्प्रसादलब्ध	×	१५	१
मदनुभवस्त्वं तथाविधा	×	१५	७-८
उपायभूतभक्ति	×	२१	४
ऐश्वर्यादिभोग	ऐश्वर्यभोग	२६	६
श्रीमतश्चरणारविन्द	श्रीमच्चरणारविन्द	२७	१
वर्तमाने	×	२७	६
आवहद्भिः	मुपजनयद्भिः	२६	५
शेषशेषाशनादि	शेषशेषाशनादिकं	३१	६
अतिकोमलदिव्यनखा	अतिकोमलनखा	३३	४
सौन्दर्य	×	३५	४
कदाऽहं	कदा वा	३६	४
धारयिष्यामि	संग्रहीष्यामि	३६	४
कदाहं···प्रवेक्ष्यामि कदाऽहं परिचरिष्यामि	कदाहंपरिचरिष्यामि कदाहंप्रवेक्ष्यामि	३६	५-६
तदेकभोगः	×	३६	८-६
भगवन्	×	३८	३

उद्धरण सूची

अकारादिक्रम	पृष्ठ	पंक्ति	आकरनाम
अनृतं नोक्तपूर्वं	१७	५	वा० रा० कि० ७।२२
उदग्रपीनांस	३२	१०	स्तोत्ररत्न ३४

उदारा:सर्वे	११	७	गीता ७।१८
चतुर्भिराजानु	३३	२	स्तोत्ररत्न ३३
तस्मात्प्रणम्य	९	५	गीता ११।४४
तेषां ज्ञानी	११	५	गीता ७।१७
त्वमेव माता	९	१	पाञ्चरात्र आगम
पितरं मातरं	८	६-७	पाञ्चरात्र आगम
पितासि लोकस्य	९	३	गीता ११।४३
पुरुषस्स पर:	१२	५	गीता ८।२२
प्रबुद्धमुखाम्बुज	३२	८	स्तोत्ररत्न ३५
प्रियावतंसोत्पल	३३	१	स्तोत्ररत्न ३३
बहूनां	१२	२	गीता ७।१९
भक्त्या त्वनन्यया	१२	६	गीता ११।५४
मद्भक्तिं लभते पराम्	१२	७	गीता १८।५४
रामो द्विर्नाभिभाषते	१७	६	वा०रा० अ० १८।३०
सकृदेवप्रपन्नाय	१७	७	वा०रा० यु० १८।३४
सर्वधर्मान्परित्यज्य	१७	९	गीता १८।६६
सर्वधर्माश्च	८	८	पाञ्चरात्र आगम

शुद्धि सूची

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
तेऽव्रजं	तेऽव्रजं	८	९
मदनुभवस्त्व	मदनुभवस्त्वं	१५	७
धर्य	धैर्य	२०	१
क्ति	भक्ति	२१	४